वैदिक साहित्य में स्त्रियों की दशा

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

की

डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

निर्देशक :
प्रो० चन्द्रभूषण मिश्र
पूर्व आचार्य
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोधकर्त्री :
कविता पाण्डेय
एम. ए. (संस्कृत वेद)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबा
कविता पाण्डेय

संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
सन् २००१

प्रति तिष्ठ विराडसि, विष्णुरिवेह सरस्वति।
सिनीवालि प्र जायतां, भगस्य सुमतावसत् ।।

अथर्व०-१४.२.१५

पुरोवाक्

परम-पिता परमेश्वर और जगत जननी माँ जगदम्बा की अनुकम्पा से देवी-देवताओं और सृष्टि-क्रम के विकास के प्रति जिज्ञासु जब भी ''शिव'' के अर्धनारीश्वर रूप को देखती उनके इस स्वरूप को जानने की मेरी इच्छा बलवती हो जाती।

परास्नातक में आने पर जब वेद ग्रुप लिया तो इस विषय के प्रति मन ही मन में दृढ़ निश्यच हो गयी। 'पर यही मेरा विषय हो' यह दुविधा के घेरे में था।

इस विषय को दिलानें वाले एवं उत्साहवर्धक मैं अपने शोध-पर्यवेक्षक गुरुप्रवर, (मानस-पिता) पूज्यपाद श्रद्धेय श्रीयुत् डॉ० ''चन्द्रभूषण मिश्र जी'' (पूर्व आचार्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग) की यावत् जीवन ऋणी रहूँगी। जिनकी समृद्ध दिव्य ज्ञान ज्योसना और स्नेहिल-छत्रछाया में मैं अपने शोध-प्रबन्ध को पूर्ण कर सकी क्योंकि, असीम सागर रूप शब्द भण्डार से ज्ञान-मोतियों का संचयन करना अत्यन्त ही कठिन कार्य होता है।

पूजनीया परमवदान्या अतिसाध्वी इस शोध-याग की ब्रह्मा देवीरूपा गुरुभार्या श्रीमती ''सुशीला मिश्रा जी'' के प्रति भी मैं हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ, जिनकी स्नेहवृष्टि मेरे मनोरथ रूपी पौधे को सदैव सिञ्चित करती रहीं।

मैं परमादरणीय श्रीयुत् डॉ० ''राम किशोर शास्त्री जी'' (रीडर संस्कृत विभाग) की ऋणी हूँ जो सर्वदा मुझे अपनी औरस पुत्री के समान स्नेह देते रहे हैं, और जिनकी प्रेरणा प्रसाद ने ही मुझे अपने शोध कार्य के प्रति संलग्न रखा।

मैं ऋणी हूॅ अपने गुरुश्रेष्ठ श्रीयुत् डॉ० ''हरिशंकर त्रिपाठी जी'' (पूर्व विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग) की जिनकी प्रेरणा मुझे अबाध गति से मिलती रही।

मैं ऋणी हूँ अपने गुरु सहृदय डॉ० श्रीमती ''मृदुला त्रिपाठी जी'' (विभागाध्यक्ष संस्कृत विभाग) की जो मुझे मेरे कार्य के प्रति समय-समय पर अनेकशः सुझाव देती रहीं।

मैं ऋणी हूँ अपने कीर्तिशेष गुरु प्रवर श्रीयुत् डॉ० ''रुद्रकान्त मिश्र जी'' की जो मुझे अपने ज्ञान रूपी सागर का प्रसाद देते रहते थे।

मैं सुश्री डॉ० ''सुचित्रा मित्रा'' जी के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिनकी ज्ञान-ज्योति सदा ही मुझे प्रकाशित करती रहीं।

कोई भी कार्य पारिवारिक सहयोग के बिना दुष्कर ही बना रहता है। इस कार्य के लिए मैं अपने पितामह स्व० श्री ''दीपनारायण पाण्डेय'' जी के प्रति हार्दिक श्रद्धान्जलि अर्पित करती हूँ जिनका आशीर्वाद उनकी अनुपस्थिति में भी सहयोगी रहा। मैं अपनी पितामही श्रीमती ''प्राणपती

पाण्डेय" जी के प्रति विशेष रुप से श्रद्धानवत् हूँ जिनके द्वारा प्रथम बार पकड़ायी गयी लेखिनी और आशीर्वाद ही मेरे शोध-प्रबन्ध के आधार बने।

मैं अपने पूज्य पिता श्री "इन्द्र नारायण पाण्डेय जी" (प्रबन्धक जनरल आफसेट प्रिन्टिग प्रेस, नैनी, इलाहाबाद) एवं स्नेहसलिला वात्सल्य मूर्ति माता श्रीमती "राजरानी पाण्डेय जी" को शतशः नमन करती हूँ, जिन्होंने अपने अतीव व्यस्त कार्यों से समय निकालकर मुझे सांसारिक झंझटों से दूर रखते हुए इस शोध-प्रबन्ध की पूर्णतारूपिणी इष्टि में अध्वर्यु बनी।

मैं अपने पूजनीय दादा श्री डॉ० "बृज नारायण पाण्डेय जी" (रजिस्ट्रार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग), पूजनीय दादा श्री डॉ० "श्याम नारायण पाण्डेय जी" (प्रधानाचार्य रामगोपाल इण्टर कालेज, विजयीपुर खागा, फतेहपुर), चाचा श्री "शिवनारायण पाण्डेय जी" (एडवोकेट) के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जो सदैव मेरे प्रेरणा-स्रोत रहे हैं।

मैं अपने स्वर्गीय चाचा श्री "हरिनारायण पाण्डेय जी" के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करती हूं, जिनकी अनुपस्थित में भी उनका आशीर्वाद मिलता रहा।

मैं अपने अग्रज श्री "रंगनाथ पाण्डेय जी" (प्रवक्ता हिन्दू इण्टर कालेज, अतर्रा, बांदा) एवं अग्रज श्री "रमानाथ पाण्डेय जी" (प्रवक्ता करपात्री इण्टर कालेज, प्रतापगढ़) के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ। जो सदैव मेरे शोध कार्य के प्रति सहयोगी रहे हैं।

मैं ऋणी हूँ अपने मामाश्री "राजबिहारी तिवारी जी" (पूर्व एस०आई०, नागपुर), मामाश्री "कुंज बिहारी तिवारी जी" (क्षेत्राधिकारी, नागपुर) तथा मामाश्री "अवध बिहारी तिवारी जी" (एस० आई० नागपुर) जिनके प्रोत्साहन तथा स्नेह का पाथेय लेकर मैं अपने शोध-कार्य में कच्छप गति से अग्रसर होती रही।

मैं श्री डॉ० "प्रदीप कुमार केसरवानी जी" (प्राचीन इतिहास विभाग इला० वि०) के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे शोध सामग्री को एकत्र करने में पूर्ण सहयोग दिया।

मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय के सभी कर्मचारियों की विशेष रूप से श्री "संतोष यादव जी", श्री "राज नारायण पाण्डेय जी", श्री "ओंकार कुशवाहा जी" एवं श्री "अनिल कुमार भारतीय" के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने पुस्तकों के खोजने तथा उन्हें उपलब्ध कराने में पूर्ण सहयोग दिया।

मैं गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ प्रयाग के प्रति आभारी हूँ। विशेष रूप से पुस्तकालय अध्यक्ष श्री डॉ० "थपलियाल जी" एवं श्रीमती डॉ० "बीना मिश्रा जी" की।

मैं पितृतुल्य श्री "ओम प्रकाश शुक्ल जी" (पूर्व मण्डल अध्यक्ष, महानगर कार्य समिति सदस्य, भा०ज०पा० इलाहाबाद) एवं पितृतुल्य श्री "शिव कुमार सिंह जी" (मंत्री शहर कांग्रेस कमेटी, इलाहाबाद) के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जो मुझे शोध कार्य के प्रति समय-समय पर प्रोत्साहित करते रहे हैं।

मैं ग्रन्थ की पाण्डुलिपि को पूरी तत्परता से टंकित करने वाले श्री "सन्दीप गोयल" जी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ, जिनके द्वारा शोध-प्रबन्ध का टंकण निश्चित समयावधि में पूर्ण हुआ।

मैं उन सभी लोगों की चिर ऋणी रहूँगी, जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सहयोगी एवं प्रेरणा स्रोत रहे हैं। मुझ अकिञ्चन के पास इसके सिवा और है ही क्या !

श्री गुरु पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती।।

कार्तिक पूर्णिमा — विद्वज्जन् कृपाकांक्षिणी

१६ नवम्बर २००२ — कविता पाण्डेय

भूमिका

वैदिक वाङ्मय अत्यन्त विशाल है और इसमें नारी के शील, गुण, कर्तव्य और अधिकारों की विस्तृत व्याख्या है। "वैदिक साहित्य में स्त्रियों की दशा" शीर्षक प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर पूर्ण किया गया है।

'मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'। मंत्र अर्थात् संहिताएँ तथा ब्राह्मण अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, एवम् अथर्ववेद के व्याख्यान के लिए प्रणीत शतपथ, ऐतरेय, जैमिनीय, पञ्चविंश एवम् गोपथ आदि तथा आरण्यक एवम् उपनिषद् वेद पद वाच्य हैं।

वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी थी, तभी तो ऋग्वेद के दशम मण्डल में एक नारी का कथन है - "मैं ज्ञान में अग्रगण्य हूँ, मैं स्त्रियों में मूर्धन्य हूँ, मैं उच्चकोटि की वक्ता हूँ। मुझ विजयिनी की इच्छा के अनुसार ही मेरा पति आचरण करें।"[1]

इस मंत्र से स्पष्ट है कि नारी यत्र तत्र सर्वत्र पूजनीय है।

१- अहं केतुरहं मूर्धाऽहमुग्रा विवाचनी।
ममेदनु क्रतुं पतिः, सेहानाया उपचरेत्।। ऋ० - १०/१५९/२

शुक्ल यजुर्वेद के १४ वें अध्याय में ऋषि नारी की प्रशंसा करता हुआ कहता है -

हे स्त्री ! तुम सुन्दर घर वाली घृत आदि से युक्त और परिवार का पालन करने वाली होकर पृथिवी के सुखद स्थान में निवास करो। ११ रुद्र और ८ वसु तुम्हारी प्रशंसा करें। तुम सौभाग्य के लिए इन मंत्रो का पाठ करो।"[1]

सात अध्यायों में विभक्त प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में वैदिक वाङ्मय की संक्षिप्त चर्चा है। द्वितीय अध्याय में सामाजिक जीवन में नारी का महत्त्व वर्णित है। तृतीय अध्याय वैदिक नारी के षोडश संस्कार से सम्बद्ध है। चतुर्थ अध्याय में नारियों के राजनैतिक जीवन, पञ्चम अध्याय में धार्मिक जीवन, षष्ठ अध्याय में आर्थिक जीवन तथा सप्तम अध्याय में नारी शिक्षा का वर्णन है। शोध - प्रबन्ध के अन्त में उपसंहार के रूप में नारी विषयक सम्पूर्ण अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

१- कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः,
स्योने सीद सदने पृथिव्याः।
अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्तु,
इमा ब्रह्म पीपिहि सौभगाय ।। यजु० १४/२

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

वैदिक वाङ्मय का संक्षिप्त परिचय

अ- वेद का महत्त्व

वेद आप्त वचन है। "वेद का वेदत्व इसी में है कि वह प्रत्यक्ष या अनुमान के द्वारा दुर्बोध तथा अज्ञेय उपाय का ज्ञान स्वयं कराता है। ज्योतिष्टोम याग के सम्पादन से स्वर्गप्राप्ति होती है, अतः वह ग्राह्य है तथा कलञ्ज-भक्षण से अनिष्ट की उपलब्धि होती है, अतएव वह परिहार्य है। इसका ज्ञान तार्किक-शिरोमणि हजारों अनुमानों की सहायता से भी नहीं कर सकता। इस अलौकिक उपाय के जानने का एकमात्र साधन हमारे पास वेद ही हैं।"[१] जो व्यक्ति वेद का अध्ययन तो करता है परन्तु उसका अर्थ नहीं जानता, वह कटी हुई शाखाओं वाले वृक्ष की तरह केवल भार ढोने वाला ही होता है। जो अर्थ को जानता है वह सम्पूर्ण कल्याण भोगता है और ज्ञान के द्वारा पापों को दूर कर स्वर्ग प्राप्त करता है।"[२] "वेद के धार्मिक महत्त्व के बारे में मनुस्मृतिकार का कथन है कि वेद धर्म का मूल हैं"[३]

१- वैदिक साहित्य और संस्कृति - आचार्य बलदेव उपाध्याय - पृष्ठ-३

२- स्थाणुरयं भारहारः किलाभूद्
अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते,
नाकमेति ज्ञानविधूत पाप्मा ।। आचार्य बलदेव उपाध्याय -पृष्ठ -५

३- वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। मनु स्मृति २.६

"ब्राह्मणों के लिए वेदाध्ययन अनिवार्य कार्य बताया गया है। वेदाध्ययन को परम तप माना गया है। यदि कोई ब्राह्मण वेदाध्ययन से विमुख होकर अन्य शास्त्रों में रुचि रखता था, तो उसे जाति बहिष्कृत करके शूद्र की कोटि में रखा जाता था।"[१]

ब- वैदिक साहित्य का विभाजन

वेद तो मुख्यतः एक ही है, परन्तु स्वरूप भेद के कारण तीन प्रकार का बतलाया गया है - ऋक्, यजुः और साम। जैमिनि सूत्र में कहा गया है कि- "जिन मंत्रों में अर्थवशात् पादों की व्यवस्था है, उन छन्दोबद्ध मंत्रों का नाम ऋचा या ऋक् है।"[२] "ऋचाओं पर आधृत गीतिरूप मंत्रों को साम कहते हैं।"[३] "जो मंत्र ऋचाओं तथा सामों से व्यतिरिक्त है, उन्हें यजुष् के नाम से जाना जाता है।"[४] इस वेद को मुख्यतः यागानुष्ठानों आदि के लिए जाना जाता है। इसमें विनियोग वाक्य का समावेश है। इस प्रकार इसे वेदत्रयी के नाम से जाना जाता है। "कृष्ण द्वैपायन को वेदों के इसी व्यास - विभक्तिकरण (पृथक्करण) - करने के कारण 'वेदव्यास' का नाम दिया गया है।"[५] वेद को ४ प्रकार का भी दर्शाया गया है। मंत्र के गुच्छ का नाम 'संहिता' है। यज्ञ के अनुष्ठान को दृष्टि में रखकर भिन्न-भिन्न ऋत्विजों

१- मनुस्मृति - २-१६६; २-१६८
२- तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था - जैमिनि सूत्र - २,१,३५
३- गीतिषु सामाख्या - जैमिनि सूत्र - २,१,३६
४- शेषे यजुः - जैमिनि सूत्र २,१,३७
५- वेदान् विव्यास यस्मात् स वेदव्यास इति स्मृतः -महाभारत

के उपयोग के लिए इन मंत्र-संहिताओं का संकलन किया गया है। इस कार्य के कर्ता स्वयं वेदव्यास जी हैं।"[1]

(स) १- ऋग्वेद का सामान्य परिचय

ऋग्वेद का अर्थ है स्तुति परक मंत्र "ऋच्यते स्तूयतेऽनया इति ऋक्। ऋग्वेद में विभिन्न देवों की स्तुतियों का यथा स्थान निर्देश है। वेदों में ऋग्वेद का गौरव सबसे अधिक माना गया है। "संहिता" शब्द का अर्थ संकलन है।

ऋग्वेदीय शाखाएँ

ऋग्वेदीय २१ शाखाओं को मुख्यतया इन पाँच भागों में विभक्त किया गया है- १- शाकलाः २-वाष्कलाः ३- आश्वलायनाः ४- शांख्यायनाः ५- माण्डूकेयाः। शाकल वाष्कल आदि इन पाँच भागों के भी उप विभाग हैं।

१. शाकल शाखा के पाँच भेद हैं - १-मुद्गल २- गालव ३-शालीय ४- वात्स्य ५- शैशिर।

२- वाष्कल शाखा के चार भेद हैं - १- बौध्य २-अग्निमाठर ३- पराशर ४- जातू-कर्ण्य।

३- आश्वलायन शाखा

४- शांख्यायन शाखा के चार भेद हैं-

१-शांख्यायन २- कौषीतकि ३- महाकौषीतकि ४- शाम्बवय।

१- वेद तावदेकं सन्तम् अतिमहत्वाद् दुरध्येयमनेकशाखा भेदेन समाम्नासिषुः। सुख ग्रहणाय व्यासेन समाम्नातवन्तः - दुर्गाचार्य निरुक्तवृत्ति - १/२०

५. माण्डूक्य शाखा के दस भेद हैं- १. बहवृच २. पैङ्ग्य ३. उछालक ४. शतेबलाख ५. गज ६. वाष्कलि ७. ऐतरेय ८. वशिष्ठ ६. सुलभ १०. शौनक इस समय मात्र शैशिरीय शाखा ही उपलब्ध है।

(स) २- यजुर्वेद का सामान्य परिचय -

यजुर्वेद के मुख्यतः कई अर्थ हैं- "यजुर्यजतेः", यज्ञ-सम्बन्धी मंत्रों को यजुष् कहते है "शेषे यजुःशब्दः" पद्य-बन्ध और गीति से रहित मन्त्रात्मक रचना को यजुष् कहते हैं। "गद्यात्मको यजुः" गत्यात्मक मंत्रों को यजुः कहते हैं। "अनियताक्षरावसानो यजुः" (अक्षरों की संख्या जिसमें नियत न हो)। यजुर्वेद में "अध्वर्यु" की प्रधानता होती है। यजुर्वेद दो शाखाओं में विभक्त है - १. कृष्ण यजुर्वेद २. शुक्ल यजुर्वेद।

यजुर्वेदीय शाखाएँ

कृष्ण यजुर्वेदी की ८६ शाखाएँ हैं और शेष १५ शाखाएँ शुक्लयजुर्वेद की मानी गयी हैं। कृष्णयजुर्वेद की चार शाखाएँ हैं -

१. कठशाखा २. कठकापिष्ठल शाखा ३. मैत्रायणी शाखा ४. तैत्तिरीय शाखा।

शुक्लयजुर्वेद की दो शाखाएँ प्राप्त हैं। - १. काण्वशाखा २. माध्यन्दिनीय शाखा। काण्व-शाखा में ४० अध्याय, ३२८ अनुवाक एवं २०८६ मन्त्र हैं। मध्यन्दिनीय शाखा में ४० अध्याय, ३०३ अनुवाक एवं १६७५ मन्त्र हैं।

(स) ३- सामवेद का सामान्य परिचय

सामवेद का वास्तविक अर्थ गान है। श्रीमद्भगवद् गीता में श्री कृष्ण ने सामवेद को अपना स्वरूप बतलाया है- "वेदानां सामवेदोऽस्मि" बृहद्देवताकारं शौनक का कहना है कि जो पुरुष साम को जानता है, वही वेद के रहस्य को जानता है- "सामानि यो वेत्ति स वेद तत्त्वम्"। सामवेद की १००० शाखाएँ हैं।

सामवेदीय शाखाएँ

१. कौथुमी शाखा - इस शाखा का प्रचार अधिकतर गुजरात में है

२. राणायनीय शाखा - इस शाखा की मान्यता विशेष-रूप से महाराष्ट्र में है।

३. जैमिनीय शाखा - इस शाखा का प्रचलन कर्नाटक प्रदेश में है, परन्तु वहाँ भी इसका पर्याप्त प्रचार नहीं है।

(स) ४- अथर्ववेद का सामान्य परिचय

अथर्ववेद - अथर्वन् - गतिहीन या स्थिरता से युक्त योग । निरुक्त के अनुसार धर्व धातु गत्यर्थक है, अतः अथर्वन का अर्थ है गतिहीन या स्थिर। गोपथ ब्राह्मण का कथन है कि तीनों वेदों के द्वारा यज्ञ के केवल एक पक्ष का ही संस्कार होता है। ब्रह्मा मन के द्वारा यज्ञ के दूसरे पक्ष का ही संस्कार करता है।

स वा एष त्रिभिर्वेदैर्यज्ञस्यान्यन्तरः पक्षः संस्क्रियते।
मनसैव ब्रह्मा यज्ञस्यान्यन्तरं पक्षं संस्कारोति।।

(गोपथ ब्रा०- ३/२)

अथर्ववेदीय शाखाएँ

व्यास जी ने अथर्ववेद का सम्पादन किया और उसे अपने चतुर्थ-शिष्य सुमन्त को पढ़ाया। चरणव्यूह के अनुसार अथर्ववेद की नौ शाखाएँ है।

१- पैप्पलाद शाखा

इसके प्रवर्तक पिप्लाद मुनि बहुत बड़े अध्यात्मवादी थे। प्राचीनकाल में इस शाखा का बहुत अधिक महत्त्व था। "प्रपञ्च-हृदय" के अनुसार इस शाखा में २० काण्ड थे। मात्र पैप्पलाद शाखा ही उपलब्ध है।

२- शौनकीय शाखा

प्रचलित अथर्ववेद संहिता ही शौनकीय शाखा है। इसमें २० कांड, ६३० सूक्त एवं ५६८७ मंत्र हैं।

द- रचना काल एवं विभिन्न मत-

वेद अपौरुषेय है। कुछ विद्वानों के अनुसार सृष्टि प्रारम्भ लाखों वर्ष पूर्व माना जाता है। पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों को ऐतिहासिक मानते हुए इनकी रचना के काल निर्धारण का प्रयास किया है

१. मैक्समूलर – ये बौद्ध धर्म के आविर्भव काल को आधार मानते हुए वैदिक साहित्य का प्रारम्भ १२०० ई० पू० मानते है।

(क) १२०० ई० पू० से १००० ई० पू० छन्दःकाल की रचनाएँ।

(ख) १००० ई० पू० से ८०० ई० पू० मन्त्रकाल की रचनाएँ।

(ग) ८०० ई० पू० से ६०० ई० पू० ब्राह्मण-काल की रचनाएँ।

(घ) ६०० ई० पू० से ४०० ई० पू० सूत्रकाल की रचनाएँ एवं श्रौत और गृह्यसूत्रों की रचनाएँ।

२. श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित – इन्होंने शतपथ-ब्राह्मण का समय २५०० ई० पू० मानकर चारों वेदों की रचना २५०४-१००० वर्ष पूर्व स्वीकार करते हुए ऋग्वेद का रचना – काल ३५०० ई० पू० माना है।

३- स्वामी दयानन्द सरस्वती – वेदों का आविर्भाव परमात्मा से हुआ है। "तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः समानि ज्ञिरे"। ऋग्० (१०-६०.६)। इनके इस मत का समर्थन श्री रघुनन्दन शर्मा भी करते हैं।

४- श्री बाल गंगाधर तिलक- उन्होंने ज्योतिषीय गणना के आधार पर ऋग्वेद की रचना का ६००० ई० पू० से ४००० ई० पू० माना है। इन्होंने वैदिक-काल को चार भागों में विभाजित किया है।

काल –	ई० पू० –	दृष्ट या प्रणीत ग्रंथ ।
अदिति काल	६०००-४०००	निविद मंत्र (गद्य-पद्यात्मक, यज्ञिय विधिवाक्य-युक्त)।
मृगशिरा काल	४०००-२५००	ऋग्वेद के अधिकांश सूक्त।
कृत्तिका काल	२५००-१४००	चारों वेदों का संकलन, तैत्तिरीय संहिता और कुछ ब्राह्मण ग्रन्थ।

अन्तिम काल (सूत्र-काल) | १४००-५०० | सूत्र-ग्रन्थ और दर्शन ग्रंथ।

इस प्रकार उन्होंने ४००० ई० पू० को वेदों का रचना-काल मानने पर बल दिया है।

५-विन्टरनित्स -

इन्होंने सभी मतों की आलोचना करके अपने मत दिये हैं। इनके अनुसार वैदिक-काल २५०० ई०पू० से लेकर ५०० ई०पू० तक है। ऋग्वेद का समय २५०० ई०पू० है।

(ध)वेदाङ्ग –

"जिनके द्वारा किसी वस्तु के स्वरूप को जानने में सहायता प्राप्त होती है उन्हें 'अङ्ग' कहते है।"[1] वेदाङ्ग छः हैं। – शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प। "महाभाष्य में लिखा है कि – ब्राह्मण को किसी कारण या प्रयोजन के बिना भी षडङ्ग वेदों का अध्ययन करना चाहिए, उनका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।"[2] "पाणिनीय शिक्षा में एक रूपक द्वारा इन्हें इस प्रकार से वेद पुरुष का अङ्ग बताया गया है – छन्द वेद के पाद हैं, कल्प हाथ हैं, ज्योतिष आँखे हैं, निरुक्त कान हैं, शिक्षा नासिका है और व्याकरण मुख है।"[3] "मुण्डक उपनिषद् में विद्या के दो प्रकार बताये गये हैं – परा और अपरा । अपरा विद्या में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के साथ छः अंगों – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष इन ६ वेदाङ्गों का परिगणन है।"[4]

१– अग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अङ्गानि। वैदिक साहित्य और संस्कृतिआचार्य बलदेव उपाध्याय – पृ०– २८२

२– ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्म· षडङ्गों वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। पातञ्जल महाभाष्य पस्पशाह्निक

३– छन्द· पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयन चक्षु· निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
शिखा घ्राण तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।। पाणिनीय शिक्षा श्लोक – ४१–४२

४– द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो विदन्ति पर चैवापरा च, तत्रापराऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदःशिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा–यया पदक्षरमधिगम्यते। मुण्डक उपनिषद् – १–१–४५

१- शिक्षा

वेदाङ्गों में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह प्रथम होने के साथ ही साथ वेदरूपी पुरुष का प्राण भी है। ''शिक्षा का अर्थ है- वह विद्या जो स्वर, वर्ण आदि उच्चारण के प्रकार का उपदेश दे।''[१] तैत्तिरीय-उपनिषद् की प्रथम वल्ली में इस विषय का समस्त मूल सिद्धान्त प्रतिपादित है। ''शिक्षा के छः अङ्गों के नाम इस उपनिषद् में इस प्रकार हैं-वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम, सन्तान।''[२] महाभाष्यकार पतञ्जलि ने उस वैदिक गुरु का उल्लेख बड़े आदर से किया है, जो उदान्त स्वर के स्थान में अनुदात्त स्वर का उच्चारण करने वाले शिष्य के मुँह पर चाँटा मार कर उसके उच्चारण को शुद्ध करता था''[३]

२- कल्प

वेदाङ्गों में कल्पसूत्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कल्प का अर्थ है - यज्ञिय विधियों का समर्थन और प्रतिपादन। ''कल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगोऽत्र इति व्युत्पन्तेः।''[४] कल्प का दूसरा अर्थ वेद विहित कर्मों का क्रमपूर्वक व्यवस्थित कल्पना करने वाला शास्त्र है। ''कल्पो वेद-विहितानां कर्मणामानुपूर्वेण कल्पना-शास्त्रम्।''[५]

१- स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा-सायण-ऋग्वेद भाष्य भूमिका - पृ० ४६
२- शिक्षां व्याख्यास्याम·। वर्णः, मात्रा, बलम्, साम सन्तानः इत्युक्त· शिक्षाध्याय- तैत्तिरीय १-२
३- उदात्तस्य स्थाने अनुदात्तं ब्रूते खण्डिकोपाध्याय· तस्मै शिष्याय चपेटिकां ददाति - महाभाष्य
४- सायण - ऋग्वेद भाष्य भूमिका
५- विष्णुमित्र - ऋग्वेद-प्रतिशाख्य की वर्गद्वयवृत्ति, पृ०१३

कल्पसूत्र चार प्रकार के होते हैं-

१- श्रौतसूत्र

जिनमें ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित और अग्नि में सम्पाद्यमान यज्ञयागादि अनुष्ठानों का वर्णन है।

२- गृह्यसूत्र -

जिनमें गृह्याग्नि में होने वाले यागों का तथा उपनयन, विवाह श्राद्ध आदि संस्कारों का विस्तृत वर्णन है।

३- धर्मसूत्र

जिनमें चतुवर्ण तथा चारों आश्रमों के कर्त्तव्यों, विशेषतः राजा के कर्त्तव्य का विशिष्ट प्रतिपादन है। ये ही कल्प सूत्र प्रधानतया परिगणित होते हैं।

४- शुल्वसूत्र

जिसमें वेदी के निर्माण की रीति का विशिष्टरूपेण प्रतिपादन है और जो आर्यो के प्राचीन ज्यामिति सम्बन्धी कल्पनाओं तथा गणनाओं के प्रतिपादक होने से वैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

३- व्याकरण

'मुखं व्याकरणं स्मृतम्" व्याकरण को वेदपुरुष का मुख कहा गया है। "यजुर्वेद में व्याकरण के सुक्ष्म रूप का वर्णन है प्रजापति के रूपों में सत्य और अनृत का व्याकरण किया है।"[१] "कत्यायन और पतजंलि ने व्याकरण

१- दृष्टवा रूपे व्याकरोत् सत्यावृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाँ सत्ये प्रजापतिः।। यजु०- १६/७७

के ५ प्रयोजन बताए हैं- १. रक्षा (वेदों की रक्षा) २. ऊह (यथास्थान विभक्तियों आदि का परिवर्तन) ३. आगम (निष्काम भाव से वेदादि का अध्ययन) ४. लघु(संक्षेप में शब्द ज्ञान) ५. असन्देह (सन्देह-निराकरण)''[१]

४- निरुक्त

निरुक्त के प्रतिपाद्य ५ विषय हैं- वर्गागम, वर्ण विपर्यय, वर्ण विकार, वर्ण नाश और धातुओं का अनेक अर्थों में प्रयोग।''[२] छः वेदाङ्गो में निरुक्त का अपना विशिष्ट स्थान है। वेदों के अन्तरङ्ग अर्थात् उनके अर्थ का प्रतिपादन करने के कारण निरुक्त का महत्त्व सर्वविदित है। निरुक्त निघण्टु (वैदिक शब्द संग्रह) का भाष्य है। महाभारत के अनुसार प्रजापति कश्यप निघण्टु के रचयिता हैं।''[३]

५- छन्द

छन्द वेद का पाँचवा अङ्ग है। वे्द के मन्त्रों के उच्चारण के निमित्त छन्दों का ज्ञान अति आवश्यक है। छन्दों के ज्ञान के बिना मंत्रों का उच्चारण तथा पाठ ठीक ढंग से नही हो सकता । प्रत्येक सूक्त में देवता, ऋषि तथा छन्द का ज्ञान आवश्यक माना जाता है। ''कात्यायन का यह स्पष्ट

१- रक्षोहागमलध्वसन्देहाः प्रयोजनम् । महाभाष्य - अह्निक १

२- वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च, द्वौ चापरौ वर्णकवकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्येत पञ्चविधं निरुक्तम्।।

३- वृषो हि भगवान् धर्मः ख्यातो लोकेषु भारत।
निघण्टुक पदाख्याने विद्धि मां वृषमुत्तमम्।। महाभारत मोक्षधर्मपर्व - ३४२/८६

कथन हैं कि जो व्यक्ति छन्द, ऋषि तथा देवता के ज्ञान के बिना होकर मन्त्रों का अध्ययन, अध्यापन, यजन तथा याजन करता है, उसका प्रत्येक कार्य निष्फल ही होता है।''[१]

६- ज्योतिष

वेदाङ्गों में अन्तिम वेदाङ्ग ज्योतिष है। ''तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि, ब्राह्मण बसन्त में अग्नि का आधान करें, क्षत्रिय ग्रीष्म में, तथा वैश्य शरद् ऋतु में आधान करें।''[२] ''कुछ यज्ञ विशिष्ट मासों तथा विशिष्ट पक्षों में किया जाता है।''[३] ''असुरों की परिभाषा देते हुए श्रुति का वचन है कि वे असुर यज्ञ से हीन होते हैं, दक्षिणा से विरहित होते है, नक्षत्र से रहित होते हैं, जो कुछ वे करते है, वे कृत्या को ही समर्पित करतें हैं ।''[४] ''वेदाङ्ग ज्योतिष की सम्मति में ज्योतिष समस्त वेदाङ्ग में मूर्धस्थानीय है। जिस प्रकार मयूर की शिखा उसके सिर पर ही रहती है, सर्पो का मणि उनके मस्तक पर निवास करता है, उसी प्रकार षडङ्गों में ज्योतिष को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है।''[५]

१- यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दो - दैवत - ब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वा ।
अध्यापयति वा स्थाणु वर्च्छति गर्तें वा पात्यते या पापियान् भवति।। (सर्वानुक्रमणी १/१)

२- वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत, ग्रीष्मे राजन्य आदधीत। शरदि वैश्य आदधीत - तैत्तिरीय ब्रा० १/१२

३- एकाष्टकायां दीक्षेरन् फाल्गुनी पूर्णमासे दीक्षेरन् - ताण्डच ब्रा० ५/९/१७

४- ते असुरा अयज्ञा अदाक्षिणा अनक्षत्रााः। यच्च किञ्चाकुर्वत तां कृत्यामेवाकुर्वत।।

५- यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ।। वे० ज्यो० - ४

द्वितीय अध्याय

वैदिक नारी का सामाजिक जीवन

परिवार का अर्थ

परिवार किसी भी समाज की मूल इकाई है। यह इकाई जितनी सुदृढ़ होगी, समाज भी उतना ही मजबूत होगा। "परिवार शब्द, परि उपसर्ग 'वृ' घेरना अर्थ की धातु से निष्पन्न माना गया है। इसलिए परिवार का शाब्दिक अर्थ घेरने वाला है।"[१] ऋक्संहिता में ब्रह्म और जीव के पारस्परिक सम्बधों को दर्शाते हुए पति-पत्नी के सम्बंधों की परिचायिका बताया गया है कि, "ये दोनों एक डाल पर बैठने वाले पक्षी हैं, दोनों में मित्रता है और एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।"[२]

सस्कृत में परिवार का अर्थ अनुयायी वर्ग,[३] सेवक वर्ग[४] राजा के अधीन कार्य करने वाला अधिकारी वर्ग[५] आदि अनेक अर्थो में हुआ है। परिवार में माता-पिता का स्थान ऊँचा होता है उन्हीं के सरंक्षण में परिवार के सभी सदस्यों को रहना पड़ता था। पारिवारिक जीवन में पिता के केवल कर्त्तव्य ही नहीं थे, अपितु उसके अधिकार भी थे।"[६] अतः परिवार से एक सामाजिक संस्था का बोध होता है।

१- संस्कृत - हिन्दी कोश - आप्टे पृष्ठ संख्या = ५८६
२- द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। ऋ० १/१६४/२०
३- पंचतत्र के मित्र संप्राप्ति तन्त्र में चित्रग्रीव नामक कपोत-राज को "कपोतसहस्र-परिवारः" सन्धिविग्रहतन्त्र में वायसराज को "काकसहस्र परिवार." और उलूकराजः का "उलूकसहस्र परिवार." कहा गया है। इन स्थानों में "परिवार" का अर्थ अनुयायी प्रतीत होता है।
४- मनुष्यवाह्यं चतुरस्रत्रयानमध्यास्य कन्या परिवारशोभि। रघुवंश - ६.१०
५- प्रख्यातवंशमक्रूरं लोकसंग्राहिणं शुचिम् ।
कुर्वीतात्महिताकाङ्क्षी परिवारं महीपतिः।। कामन्दकीयनीतिसारः - ४/१०
६- ऋग्वेद ३/३०/१-४

माता के रूप में

परिवार में माता का स्थान पिता के पश्चात् था। ऋग्वैदिक ऋषियों ने जहाँ देवों के साथ पारिवारिक सम्बंधों की स्थापना की है, वहाँ पिता के बाद दूसरे स्थान पर माता का भी उल्लेख किया है। ऋग्वेद में इन्द्र को पहले पिता फिर माता कहा गया है।"[१]

"त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ । अधा ते सुम्नमीमहे।"।

यही क्रम दूसरे स्थान पर इस प्रकार से है, जहाँ अग्नि को मनुष्यों का पिता और माता कहा गया है।"[२]

ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं योः।

यूयं हिष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः।।

अप् औषधि तथा सूर्य के सम्बंधियों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है - द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा।"[३]

अदृष्टः विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम्।।

इसी प्रकार द्युलोक, पृथिवी और अग्नि को सम्बोधित करते हुए भी उन्हें क्रमशः पिता, माता और भ्राता कहा गया है।"[४]

द्यौष्पितः पृथिवी मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृलता नः।

विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्मबहुलं वियन्त।।

१- ऋक्० - ८,९८,११
२- ऋक्० - ६,५०,७
३- ऋक्० - १,१९१,६
४- ऋक्० - ६,५१,५

ऋग्वेद में कुछ मातृक नाम भी पाये जाते हैं, जो माता की गौरव पूर्ण स्थिति की ओर सङ्केत करते हैं।

ऋग्वेद में माता का स्थान अत्यंत ऊँचा तथा गरिमामण्डित है। पारिवारिक जीवन वह अटूट श्रृंखला है, जिससे परिवार के सभी सदस्य जुड़े है। नारी केवल पुरुष की जीवन-संगिनी ही नहीं बल्कि पुत्रों की माता भी थी। संतान को पिता की तुलना में अपनी माता से अधिक लगाव होता है। ऋग्वेद में माता के वाचक अनेक शब्द आये हैं ऋग्वेद में मातर् शब्द का प्रयोग अधिकतर देवों के सम्बन्ध में हुआ है फिर ऐसे उदाहरण कम नहीं मिलते है जहाँ मनुष्य माता के प्रसङ्ग में आये या मनुष्य माता की उपमा के रूप में हो। ऋषि शुनःशेप प्रार्थना करते हैं कि 'अमर देवों में से किस देव के चारु नाम का ध्यान करूँ, जो मुझे बन्धनमुक्त कर दे, जिससे मैं फिर अपने पिता और माता को देख सकूँ।"[1] ऋग्वेद के दूसरे मंत्र में कहा गया है -माता सो जाये, पिता सो जाये, कुत्ता सो जाये और विश्वपति सो जाये।"[2] इसी प्रकार एक अन्य स्थल में मनुष्य माता का उल्लेख हुआ है।"[3] उपमान के रूप में भी ऋग्वेद में मनुष्य माता का अनेक बार उल्लेख हुआ है।"[4]

'पितर्' शब्द के द्विवचन के समान 'मातर्' शब्द के द्विवचन का भी माता और पिता के दोनों अर्थ में प्रयोग होता है 'द्यावा-पृथिवी तेरे विजयी पराक्रम से ऐसे चिपटते हैं जैसे माता अपने बच्चे से चिपटती है।"[5]

१- ऋक्० - १,२४.१,१,२४,२
२- सस्तु माता सस्तु पिता श्वा सस्तु विश्वपतिः । ऋक्० - ७,५५,५
३- ऋक्० - १,११४,७ ; ५,३४,४ ; ८,१,६ ; १०,३४,१०;
४- ऋक्० - ५,१५,४ ; ६,७५,४ ; ७,४३,३ ; १०,१८,११; ६४,१४
५- अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा। ऋक्०- ८,६६,६; १,१५६,३ ; ३,१,७ ; २,२ ; ३३,३ ; ६,६,३ ; १८,५ ;

डॉ० इरावती कार्वे का मत है कि ऋग्वेद में मातृतमा तथा अम्बितमा का प्रयोग नदी"[१] तथा जल"[२] के प्रसङ्ग में आया है।

१- अम्बा, अम्बी, अम्बि

ऋग्वेद में माता के वाचक इन शब्दों से सम्बद्ध कुछ मंत्र मिलते हैं।

उपासक सरस्वती नदी से प्रार्थना करता है कि हम अप्रशस्त जैसे हैं, हे माता, हमें प्रशस्ति प्रदान करो।"[३] इसी तरह एक ऋषि औषधियों को अम्बा शब्द से सम्बोधित करता है। वह उनकी प्रशंसा में कहता है- "हे माता तुम्हारे सैकड़ों स्थान हैं" और तुम्हारी उत्पत्ति सहस्रों प्रकार है। एक अन्य ऋक् में जलों का ऋत्विजों की माता तथा जामि के रूप में कथन किया गया है।"[४]

यज्ञकर्ताओं की बहिनें तथा मातायें अपने मार्ग पर जा रही हैं।"[५] ऋक् में मेघ को विद्युत् रूप अग्नि को अम्बि अथवा अम्बा कहा गया।

कान्तिमान् घूमता हुआ वत्स (विद्युत् रूप अग्नि) बन्धन में डालने वाले को नहीं पाता; स्तुति के लिए माता (मेघ) के समीप जाता है।"[६] सरस्वती नदी को 'अम्बितमा' शब्द से सम्बोधित किया गया है। 'हे श्रेष्ठ माता, श्रेष्ठ नदी, श्रेष्ठ देवी सरस्वती।"[७]

१- ऋ०- १,१५८,५ ; २,४१,१६ ; ३,३३,३
२- ऋ०- ६,५०,७
३- अप्रशस्त इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि। ऋक्०- २,४१,१६
४- शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः। ऋक्०- १०,९७,२
५- अम्बयो यन्ति अध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्। ऋक्०- १,२३,१६
६- चरन्वत्सो रूशन्निह निदातारं न विन्दते
वेति स्तोतव अम्ब्यम्। ऋक्०- ८,७२.५
७- अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति। ऋक्०- २,४१,१६

२- नना

एक अन्य मंत्र में 'नना' पद माता के अर्थ में प्रयुक्त है। ऋग्वेद में यह केवल एक बार आया है।

मैं कवि हूं, पिता वैद्य है और माता चक्की पीसने वाली है।"[१]

३- प्रसू, सू

माता के वाचक 'प्रसू' और 'सू' शब्द सू 'प्रसव करना' अर्थ की धातु से निष्पन्न हैं। बच्चों को जन्म देने के कारण माता को 'सूः' अथवा 'प्रसूः' कहा गया है।

माता ऊपर थी, पुत्र नीचे था। (राक्षसी) दानु वत्स सहित धेनु के समान लेटी थी।"[२]

अलङ्कारिक भाषा में अग्नि को उत्पन्न करने वाली अरणियों को भी 'प्रसू' कहा गया है।"[३]

इन शब्दों में 'सू' का अर्थ उत्पन्न करने वाली है। प्रसू शब्द का अर्थ माता भी है।"[४]

१- कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना। ऋक्०- ६,११२,३
२- उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद् दानुः शये सहवत्सा न धेनु। ऋक्०- १,३२,६
३- अन्तर्नवासु चरति प्रसूषु। ऋक्०- १,६५,१०
४- लौकिक संस्कृत में भी 'प्रसू' का अर्थ माता होता है। अमरकोश- २,६,२६

जनि, जनित्री

माता के वाचक जनि और जनित्री शब्द जन् धातु से निष्पन्न माने जाते हैं।

अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथाइव प्रन्ययुः साकमद्रयः।

(उपासक इन्द्र की स्तुति में कहता है कि) वे (मरुत्) तुम्हारी ओर इस प्रकार दौड़े, जैसे माताएं बच्चे की ओर दौड़ती है। मेघ रथों के समान एक साथ मिल कर शीघ्रता से आगे बढ़े।"[१]

'जनित्री' शब्द 'जनितर्' (जनितृ) का स्त्रीलिङ्ग का रूप है और संज्ञा शब्द के रूप में इसका माता के अर्थ में प्रयोग हुआ है।

यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत् प्र तं जनित्री विदुष उवाच।

जिसने वृत्र को अन्न दिया था, उसके विषय में माता (अदिति) ने बुद्धिमान् (इन्द्र) को बता दिया।"[२]

'मातर' शब्द के समान 'जनित्री' शब्द के द्विवचन का भी माता और पिता दोनों के लिये प्रयोग हुआ है।

देवी देवस्य रोदसी जनित्री बृहस्पति वावृधतुर्महित्वा।

देव के माता-पिता, दिव्य, द्यावा-पृथिवी ने अपने सामर्थ्य से बृहस्पति का वर्धन किया।"[३]

१- ऋक०- ४,१९,५,
२- ऋक०- २,३०,२,
३- ऋक०- ७,९७,८,

पुत्री

ऋग्वेद में अनेक प्रसंगों में सन्तान की कामना की गयी है, जिससे यह अनुमान लगाया जाता है कि जहाँ सामान्य रूप से पुत्र की कामना की गयी है किन्तु वहाँ पुत्री की भी कामना की गयी है भले ही वह अप्रत्यक्ष रूप से। ऋग्वेद में पूर्ण रूप से पुत्री की कामना का एक भी मंत्र नही मिलता पर पुत्र की कामना के अनेक मंत्र हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ऋग्वैदिक आर्य भी पुत्री के जन्म से हर्षित नहीं होते थे। ऋग्वेद में पुत्र के जन्म को प्रसन्नता का कारण कहा गया हैं। परन्तु पुत्री के जन्म के विरोध में कुछ भी नही कहा गया है। जिससे यह आभास होता है कि ऋग्वेद काल में पुत्री की स्थिति उत्तर वैदिक काल की तुलना में सुदृढ़ थी।''[१] ऐतरेय ब्राह्ममण में पुत्र को ज्योति, परन्तु पुत्री को कृपण कहा गया है।''[२] अथर्ववेद में स्पष्ट रूप से स्त्री गर्भ को पुमान् गर्भ में परिवर्तित करने के लिए मंत्र दिये गये हैं।''[३]

गर्भ को स्त्री में परिवर्तित करने वाले राक्षसों को भगाने के लिए औषधि का विधान किया गया है।[४] तथा पुत्री के जन्म को अच्छी दृष्टि से नही देखा गया है।''[५]

१- पुत्रो न जातो रण्तो दुरोणे। ऋक्०- १,६९.३
२- कृपणं ह दुहिता ज्योतिर्ह पुत्रः परमे व्योमन्। ऐत० ब्रा०- ७.१३
३- अथर्व० - का० ३ सूक्त २३ का० ६ सू० ।।
४- अथर्व० - ८.६.२५
५- अथर्व० - ६,११,३

स्त्री की उत्पत्ति अन्यत्र धारण करे, यहाँ पुरुष धारण करें हे पिङ्ग !उत्पन्न होने वाले की रक्षा कर पुरुष को स्त्री न बना।''

''तैत्तिरीय संहिता (६,५,१०,३) में याज्ञिक क्रिया के सम्बंध अवभृथ के लिये जाते समय स्थली को छोड़ देने तथा चमस को उठा लेने का विधान करते हुए कहा गया है - ''तस्मात् स्त्रियं जातां पराऽस्यन्त्युत् पुमांसं हरन्ति।'' अर्थात् जब कन्या उत्पन्न होती है, तो उसे पड़ा रहने देते है। परन्तु यदि पुत्र जन्म लेता है, तो उसे हर्ष से गोद में उठा लिया जाता है। इसी तरह स्थाली को वेदी में छोड़ दिया जाता है, परन्तु चमस को उठा लिया जाता है। इससे उत्तरवैदिक काल में कन्या के प्रति उपेक्षा भाव तथा हीनता का आभास होता है। ऋग्वैदिक काल मे कन्या के प्रति उपेक्षा का भाव प्रकट करने वाला कोई मंत्र नहीं है। बल्कि यज्ञ करने वाले दम्पति की यह कहकर प्रशंसा की गयी है कि वे पुत्र और पुत्रियों से युक्त होकर पूर्ण आयु प्राप्त करते है।''[१] यदि किसी दम्पति के पुत्र और पुत्री दोनों उत्पन्न हो जायें तो उनमें से पुत्र पिता के सत्कर्मो को करता है और पुत्री आदर करने योग्य होती है।''[२] ऋग्वेद में प्रभूत संख्या में बाणों को धारण करने वाले इषुधि की प्रशंसा 'अनेक पुत्रियों का पिता' कहकर की गयी है।''[३] ऋग्वेद-काल में पुत्री को विपत्तिरूपा न मानने का एक कारण यह भी जान पड़ता है कि

१- पुत्रिण ता कुमरिण विश्वमायुर्व्यश्नुतः । ऋक्० - ८/३१/८

२- यदी मातरो जनयन्त वह्निमन्यः कर्ता सुकृतोस्य ऋन्धन् । ऋक्० - ३,३१,२
अन्यतरः सन्तानकर्ता भवति पुमान् दायोदोऽन्यतरोर्धयित्वा जाभिः प्रदीयते परस्मै निरुक्त, ३,६

३- बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रः । ऋग्वेद'' ६,७५,५

उस समय कृत्रिम पुत्रों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था, इसलिए औरस पुत्र के अभाव में पुत्री को ही पुत्र के समान कुल को चलाने वाला समझा जाता था। दूसरे ऋग्वेद-काल में पुत्री को विवाह में देने के बदले विवाह-शुल्क लेने की प्रथा को घृणा की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। ऋग्वेद-काल में पुत्री को विवाह में यौतक (वहतु) देने की प्रथा अधिक प्रचलित थी, लेकिन कभी-कभी वधू-शुल्क भी लिया जाता था। विशेषतया यदि कन्या सुन्दरी और गुणशालिनी होती थी और जामाता में कोई अङ्गविकार अथवा अन्य कोई दोष होता था, तो उसे अपनी होने वाली वधू के पिता अथवा अन्य सम्बंधियों को द्रव्य की अच्छी राशि देनी पड़ती थी।"[1]

ऋग्वैदिक समाज पुरुष प्रधान था। इसलिए ऋग्वेद में पुत्र की अपेक्षा पुत्री का उल्लेख अत्यल्प है। उसके लिये पिता का घर विवाह के पूर्व तक ही था। विवाह पश्चात् वह दूसरे कुल में चली जाती थी। ऋग्वेद में पुत्री का स्थान इतना महत्वपूर्ण नहीं था, जितना कि माता और पत्नी के रूप में। शायद यही कारण है कि, ऋग्वेद में पुत्री का अन्य लोगों के साथ बहुत कम ही उल्लेख हुआ है। फिर भी ऋग्वेद में पुत्री के विषय में जो प्रसङ्ग आये हैं, उनसे ऋग्वेदकाल में वैदिक परिवार में पुत्री की स्थिति का बहुत कुछ आभास किया जा सकता है।

१- अश्रवं भूरिदावन्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात्। ऋक्० - १,१०९,२

ऋग्वेद में पुत्री के लिये अनेक शब्दों का प्रयोग मिलता है। प्रथमतः हम दुहिता को लेते हैं। दुहिता शब्द का प्रयोग अधिक मिलता है। दुहितर् (दुहितृ) है। दुहितर् का प्रयोग इण्डो-यूरोपीय काल से ही प्रचलित है। निरुक्तकार ने 'दुहिता' की तीन प्रकार से व्युत्पत्ति की है – दुहिता दुर्हिता दूरे हिता दोग्धेर्वा।''[1] निरुक्त के टीकाकार दुर्ग और देवराजयज्वा के अनुसार पुत्री को दुहिता कहने का कारण यह है कि वह जहाँ कहीं दी जाती है, दुर्हित (दुःखी) होती है।

अथवा दूर रहने पर पिता के लिये हितकारी होती है अथवा वह पिता के पास से बार-बार द्रव्य प्राप्त करती है।''[2] निरुक्तकार ने जैसी निरुक्ति की है और उसके टीकाकारों ने जैसी उसकी व्याख्या की है, ऋग्वैदिक काल की पुत्री की स्थिति के विपरीत है। यास्क और उनके टीकाकारों के समय पुत्री की सामाजिक दशा पर प्रकाश पड़ता है। ऋग्वेद-काल में पुत्री की समाजिक दशा उस दशा से सर्वथा अलग थी जैसा कि यास्क के द्वारा दी गई दूसरी और तीसरी निरुक्ति व्याख्याओं से स्पष्ट है। ऋग्वेद काल में विवाहित पुत्री का अपने पिता के कुल से कोई सम्बंध नहीं रहता था। तब द्रव्य दोहन करने का प्रश्न ही नही उठता। ''वैदिक इण्डैक्स'' के लेखकों ने 'दुहितर्' की व्युत्पत्ति के बारे में अपनी सहमति प्रकट करते हुए लिखा है कि यह शब्द ''दुह्'' दुहना धातु से निष्पन्न हुआ है। अतः विद्वानों का

१- निरुक्त ३,४
२- निरुक्त ४

मत है कि इसका तात्पर्य "दूध दुहने वाली" अथवा "दूध पिलाने वाली न होकर" बच्चे का पालन करने वाली है।"[१]

कन्या, कन्यना, कना, कनी, कनीनका

इन सभी शब्दो का प्रयोग पुत्री के अर्थ में पाया जाता है। ये शब्द साधारणतया किशोरावस्था की अविवाहित पुत्री के लिए प्रयुक्त है। इन शब्दों की व्युत्पत्ति कन् धातु से मानी गयी है। निरुक्तकार यास्क महोदय ने "कन्या" शब्द की अनेक प्रकार से निरुक्ति की है।"[२] परन्तु उनमें से अन्तिम निरुक्ति–कनतेर्वा स्यात्कान्तिकर्मणः (अर्थात् कन्या शब्द कान्ति अर्थ की कन् धातु से निष्पन्न माना जाता है) अधिक उपयुक्त है।

जबकि ऋग्वेद में कन् जैसा कोई शब्द नहीं मिलता है। जबकि इससे निष्पन्न कनीयस् और कनिष्ठ शब्दों का ऋग्वेद तथा उत्तरवैदिक साहित्य में प्रयोग मिलता है। इसलिए यह बिलकुल सम्भव है कि पुत्र के वाचक अनेक शब्द "अल्प" अर्थ के वाचक शब्दों से निष्पन्न है।"[३]

पुत्र शब्द के वाचक 'तन' शब्द के समान 'कना' शब्द का ऋग्वेद में संज्ञा और विशेषण दोनों रूपों में प्रयोग मिलता है।

१– वैदिक इन्डेक्स खण्ड १, ३७

२– कन्या कनीया भवति क्वेयं नेतव्येति वा कमनेनानीयत इति वा कनतेर्वा स्यात्कान्तिकर्मणः। निरुक्ति ४,१५

३– इरावती कार्वे

पुत्री के लिए "नप्ती" स्त्रीलिङ्ग शब्द का "ऋग्वेद" में अनेक बार प्रयोग हुआ है। "यह्वी" भी स्त्रीलिङ्ग रूप है और यह "पुत्री" शब्द का वाचक है।

योषा, योषणा, योषित् – ये शब्द "यु" धात से निष्पन्न माने जाते है।"[१] इसकी व्युत्पिप्ति लभ्य अर्थ है 'मिलने वाली', जिसकी अवस्था मिलने वाली हो अर्थात् 'युवा स्त्री'। 'ऋग्वेद' में कहीं पर इसका अर्थ नववधू कहीं युवा पत्नी कहीं अविवाहित लड़की है।

ऋग्वेद में कना, दुहितर, नप्ती, यह्वी, योषा आदि से सम्बद्ध मंत्र अधोलिखित हैं-

कना

अधा गाव उपमाति कनाया अनु श्वान्तस्य कस्य चित्परेयुः।"[२]

'तब गायें कन्या' और प्रत्येक जीवित मनुष्य को प्रसन्न करने के लिए बाहर निकालीं। कना का संज्ञा के रूप में प्रयोग हुआ है, लेकिन निम्न ऋक् में कना का 'दुहितर्' के विशेषण के रूप में प्रयोग किया गया है।

पुनस्तदा वृहति यत्कनाया दुहितुरा अनुभृतमनार्वा।"[३]

उग्र (अनर्वा) देव ने जो छोटी पुत्री में धारण किया था, उसे फिर निकाल लिया।" 'कनी' शब्द का 'जनी' (= विवाहित स्त्री) के विपरीत 'अविवाहिता' के अर्थ में प्रयोग किया गया है।

१- Griffith : Hymns of the Rigveda Vol III, p.370

२- ऋग्वेद - १०,६१,२१, 'कना' से कदाचित् 'सरमा' का अभिप्राय है।

३- ऋग्वेद - १०.६१.५

जारः कनीनां पतिर्जनीनाम्।"[1]

अग्नि अविवाहित लड़कियों का जार (प्रेमी) है और विवाहिताओं का पति है।

त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन् गुह्यं विभर्षि।"[2]

(हे अग्नि) जब तुम अविवाहित लड़कियों के रहस्यों को छिपाकर रखते हो, तो तुम अर्यमा हो जाते हो।

'कन्या' शब्द का विवाह अवस्था की अविवाहित लड़की के लिये अथवा नव-विवाहित लड़की के लिये प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद में कन्या के प्रेमियों का वर्णन है।

कन्येव तन्वा शाशदानां एषि देवि देवमियक्षमाणम्।"[3]

संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादार्विवक्षांसि कृणुषे विभाती।

'हे देवि उषस्, तू कन्या के समान शरीर के सौन्दर्य से गर्वित अपनी कामना करने वाले देव के समीप जाती है। मुस्कराती हुई युवती एवम् शोभायमान (उषस्) उसके सामने वक्षःस्थल को प्रकट करती है।

नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते।"[4]

(विश्वामित्र द्वारा उथली हो जाने की प्रार्थना करने पर नदियाँ (विपाशा और शुतुद्रि) कहती हैं) मैं तेरे लिये दूध पिलाने वाली स्त्री के समान नीचे झुकती हूँ और प्रेमी के लिये कन्या के समान तेरे लिये आत्म-समर्पण करती

४- ऋग्वेद - १.६६.४
१- ऋग्वेद - ५,३,२
२- ऋग्वेद - १,१२३,१०
३- ऋग्वेद ३,३३,१०

हूँ।

अभि त्वा योषणो दश जारं न कन्यानूषत।''[१]

दस युवतियाँ तेरा ऐसे स्वागत करती हैं, जैसे कन्या अपने प्रेमी का स्वागत करती है।

यहाँ दोनों हाथों की अंगुलियों द्वारा अभिषव किये जाते हुए सोम की कन्या द्वारा स्वागत किये जाते हुए प्रेमी से तुलना की गई है।

ऋग्वेद में एक बार 'कन्यना' शब्द का भी प्रयोग हुआ है जो 'कन्या' का ही रूपान्तर प्रतीत होता है और इसका अर्थ भी अविवाहित लड़की है।

स्तोम जुषेथां युवशेष कन्यनाम्।''[२]

''(हे अश्विनों) तुम दोनों स्तोम को ऐसे स्वीकार करो, जैसे युवक कन्या (कुमारी) को स्वीकार करता है।''

ऋग्वेद में एक बार 'कनीनका' शब्द का भी कन्या के अर्थ में प्रयोग हुआ है।

कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके वभ्रू यामेषु शोभते।''[३]

(उपासक इन्द्र के अश्वों की स्तुति करता है कि) यज्ञ स्थलों में (इन्द्र के) वभ्रु-वर्ण अश्व काष्ठ के स्तम्भों पर स्थापित छोटी कन्याओं के समान शोभित होते हैं।

१- ऋक्० -६.५६,३
२- ऋक्० - ८,३५,५
३- ऋक्० - ४,३२,२३

दुहिता

युवां ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वां नारा।"[1]

भूतं मं अह्न उत भूतभक्तवेऽश्वावते रथिने शक्तमार्वते।।

हे अश्विनों, राजा की पुत्री घोषा तुम्हारे पास आई और बोली - हे वीरों, मैं तुमसे याचना करती हूँ। तुम दिन में और रात्रि में मेरे समीप रहो, तुम अश्वों वाला तथा रथ में चलने वाला वीर (अर्वत्) प्राप्त करने में मेरी सहायता करो।

ऋग्वेद में दुहितृ शब्द का उषस् तथा सूर्या के प्रसङ्ग में अनेक बार प्रयोग हुआ है, जहाँ क्रमशः दिव् और सूर्य की पुत्री (दुहिता) कहा गया है।"[2]

१- ऋक्० - १०,४०,५०
२- वृहद्देवता (vii 119-21) के अनुसार उषस्, सूर्या और वृषकपायी उषस् के तीन भेद हैं।

आ सूर्यस्य दुहिता ततान श्रवो देवेष्वमृकतमजुर्यम्।"[1]

'सूर्य की पुत्री ने देवों में अमृत एवम् अजुर्य यश का विस्तार किया।'

रथं कमाहुद्रेवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहितावृणीत।"[2]

किस रथ को दौड़ते हुए घोड़ों वाला तथा शीघ्रगामी कहते हैं, जिसे सूर्य की पुत्री ने वरण किया ।

पर्जन्यवृद्धं मृहिषं तं सूर्यस्य दुहिताभरत्।"[3]

इसमें श्रद्धा को भी दुहिता कहा गया है।

'मेघ के द्वारा वृद्धि को प्राप्त उस महिष (सोम के पौधे) को सूर्य की पुत्री (श्रद्धा) लाई।'

य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः।"[4]

इसमें पृथिवी को इन्द्र की दुहिता कहा गया है।

'जिस (इन्द्र) ने अपनी पुत्री (पृथिवी) के अङ्क में सब रूपों को धारण करते हुए हमारे लिये यह किया है।

रात्रि और उषस् दोनों को दिव् की पुत्री कहा गया है, इसलिये ऋग्वेद में उन्हें परस्पर बहिन भी कहा गया है।"[5]

अरूषस्य दुहितरो विरूपे स्तृभिरया विविशे सूरो अन्या।"[6]

अरुण (दिव्) की पुत्रियाँ अलग-अलग रूप वाली हैं। एक (रात्रि) तारों से भूषित है और दूसरी (उषस्) सूर्य की किरणों से।

१- ऋक्० - ३,५३,१५
२- ऋक्० - १,४८,६
३- ऋक्० - ६,११३,३, "HYMNS of Rigveda IV,P,104
४- ऋक्० - ५,४२,१३
५- ऋक्० - १,१२,८ स्वासास्वत्रे ज्यायस्यै योनिमारैक्।
६- ऋक्० - ६,४६,३

नप्ती

उत सुत्ये पयोवृधा माकी रणस्य नप्त्या जनित्वनाय मामहे।।"[१]

(ऋषि मेघातिथि काण्व कहते है।) - उसने दो दूध बढ़ाने वाली युवती पुत्रियाँ विवाह के लिये प्रदान की।

सोम का सेवन करने वाले हाथों तथा अंगुलियों को भी नप्ती कहा गया है।

परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः। सुवानो याति कविक्रतुः।"[२]

कान्तदर्शी बुद्धि वाला, द्युलोक का कवि (सोम) जब हाथों (पुत्रियों) में रखा जाता है, तो प्रिय अन्नों (वयांसि) को बहाता हुआ जाता है।

नप्तिभिर्यो विसस्वतः शुभ्रो न मामृजे युवा।"[३]

जो (सोम) शुभ्र युवा के समान विवस्वान् की पुत्रियों"[४] (अंगुलियों) के द्वारा अलंकृत किया जाता है।

यह्वी:

उष व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः।"[५]

मै द्युलोक की दोनों पुत्रियों (उषस् और रात्रि) को जानने वाली स्तुतियों के साथ प्रशंसनीय बलों के साथ तुम्हारे (अर्थात् देवों के) समीप आता हूँ।

१- ऋक्० - ८,२.४२
२- ऋक्० - ९-९.१
३- ऋक्० - ९.१४,५
४- ग्रिफिथ - op cit Vol III P 377
५- ऋक्० - ५,४,१,७

योषाः

युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम्।"[१]

(हे अश्विनों) तुम अपने पराक्रमों से पुरुमित्र की पुत्री को विमद के लिय पत्नी के रूप में लाओ।

युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाय।"[२]

तुम दोनों पुरुमित्र की सुन्दर अथवा शुचि (शन्ध्यु) पुत्री को विभद के लिए रथ में लाओ।

योषा शब्द का अविवाहित कन्या के अर्थ में भी प्रयोग हुआ है।

सुसङ्काशा मातृमृष्टेव योषा विस्तन्वं कृणुषे दृशे कम्।"[३]

(हे उषसत्) माता द्वारा अलंकृत सुन्दर रूप वाली कन्या के समान अपने शरीर को प्रकट कर रही है।

पुरोडाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः वधूयुरिव योषणाम्।।"[४]

इस मंत्र में ऋषि वामदेव इन्द्र से प्रार्थना करते हैं कि हमारे पुरोडाश को खाओ और हमारी वाणी का सेवन करो, जैसे वधू की कामना करने वाला कन्या का सेवन करता है।

अध स्या योषणा मही प्रतीची वशवश्व्यम्। अधिरूक्मा वि नीयते।।"[५]

१- ऋक्० - १,११७,२०
२- ऋक्० - १०,३६,७
३- ऋक्० - १,१२३,११
४- ऋक्० - ४,३२,१६
५- ऋक्० - ८,४६,३३

"योषणा" शब्द विवाह योग्य अवस्था की कुमारी के लिये प्रयुक्त हुआ लगता है। इस समय वह स्वर्ण से विभूषित महान् युवती अश्व के पुत्र वश की ओर ले जाई जाती है।

एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति गच्छेञ्जारो न योषितम्।।"[1]

श्येन के समान यह (सोम) मानुषी प्रज्ञा में इस प्रकार आकर बैठता है, जैसे प्रेमी प्रेयसी के पास जाता है।

१- ऋक्० - ६,३८,४

वर चुनने की स्वतंत्रता -

वैदिक युग में विवाह योग्य किसी भी युवती को अपने मनोरूप वर चुनने की स्वतंत्रता थी।"[१] परन्तु यह क्षत्रिय कन्याओं तक ही सीमित जान पड़ती है। ऋग्वेद में युवक और युवतियों के अनेक प्रेमालाप की घटनाएँ मिलती है।"[२] यह सामान्य कन्या के निमित्त नहीं था। ऋग्वेद में उस पिता की प्रसन्नता का वर्णन है जो अपनी पुत्री के वर अन्वेषण से बहुत प्रसन्न होता है।"[३]

शतपथ ब्राह्मण में 'सुकन्या' का निःसन्दिग्ध कथन है कि, मेरे माता-पिता ने मुझे जिस पति के हवाले किया है उसे मै जीते जी नहीं छोड़ूँगी।"[४] माता पिता की इच्छा पर ही कन्या का विवाह निर्भर होता था। इसकी पुष्टि राजा रथवीति के आख्यान से भी होती है। श्यावाश्व ऋषि ने राजा से उसकी कन्या से विवाह का प्रस्ताव किया।

१- कियती योषामर्यतो वध्योः परिप्रीता पन्यसा वार्येण।
भद्रा वधूर्भवति यत्सुपंशा स्वयं सा मित्रं वनुते जनेचित्।। ऋ० १०/२७/१२

२- ७/६२/६, ९/५६/३, १०/३०/६। ऋग्वेद

३- पिता नत्र दुहितः सेकमृञ्जन् संशग्म्येन मनसा दधन्वे। ऋ०- ३/३१/१

४- सा होवाच यस्मै मां पिताऽदान्नैवाहं तं जीवन्तं हास्यामीति (शतपथ ४/१/५/९)

रथवीति ने अपनी विदुषी रानी शशीयसी की सम्मति से ऋषि से पुत्री का पाणिग्रहण कराया।''[1] इससे यह सिद्ध होता है कि उत्तरवैदिक काल में विवाह के विषय में माता-पिता की सम्मति कन्या के लिए सर्वथा मान्य तथा ग्राह्य होती थी।

विवाह सर्वदा युवक तथा युवती का हुआ करता था, बाल विवाह का कहीं भी संकेत नहीं मिलता । ऋग्वेद दशम मण्डल का ८५ सूक्त तद्युगीन विवाह-पद्धति का मनोरम निदर्शन है। ऋग्वैदिक भारत में इससे पता चलता है विवाह एक परमपवित्र संस्था के रूप में सर्वमान्य था।

१- बृहद्देवता- ५/५०-८०

ऋग्वैदिक कालीन कन्या 'समन' मेले तथा अन्य उत्सवों तथा समारोहों सें सम्मिलित होने के लिए अलङ्कृत होकर जाती थीं।"[1] ऋग्वेद में इस बात के प्रमाणस्वरूप कई मंत्र मिलते हैं।"[2] "समन" का मुख्य उद्देश्य अश्वों और रथों की दौड़ होती थी। फिर भी यह उत्सव युवक एवं युवतियों को मनोनुकूल साथी चुनने का अवसर भी प्रदान करते थे। अविवाहित यौवन-सम्पन्न बालिकायें अपने योग्य युवक वरों को आकर्षित करने के लिए सुन्दर वस्त्र और आभूषण धारण करके जाया करती थीं।[3] उनके इस कार्य में घर के किसी भी सदस्य को आपत्ति नही होती थी। अपितु माताएँ अपनी पुत्रियों को सजधज कर "समन" में जाने के लिए प्रोत्साहित करती थीं।"[4] यद्यपि ऋग्वेद में कोई ऐसा स्पष्ट उल्लेख नहीं है जिससे कन्या की पूर्ण रूपेण स्वतंत्रता सिद्ध होती हो। ऋग्वेद में घोषा की घटना ऐसी ही है जिसमें घोषा ने अश्विनौ के अनुग्रह से स्वयं पति प्राप्त किया था।[5] एक ऋचा में स्पष्ट रूप से ऐसी वधू की प्रशंसा की गई है जो अपनी सुन्दरता के कारण लोगों में से स्वयं अपना साथी चुन लेती है।[6]

१- अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् ऋक्०- ४,५८,८
२- १, ४८, ६; १, २४, ८; ४, ५८, ८; ६; ७, २, ५; ६, ४; १०, ८६, १० ऋक्०-
३- पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रवो न समनेष्वञ्जन्। ऋक्०- ७, २, ५
४- सुसङ़ाया मातृमृष्टेव योषाविस्तत्वं कृणुषे दृशे कम् । ऋक्०- १, १२३, ११
५- ऋक्०- १०,४०
६- भद्रा वधुर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जनं चित्। १०, २७, १२ ऋक्०-

पत्नी

ऋग्वैदिक पत्नी की गृह में स्थिति और उसके अधिकार का ज्ञान उसके लिए प्रयोग होने वाले "दम्पति" तथा "गृहपत्नी" शब्दों से होता है। जिस प्रकार पति गृहस्वामी था उसी प्रकार वह भी गृहस्वामिनी समझी जाती थी। विवाह के समय भी वधू को पतिगृह में जाकर "गृह पत्नी" होने का आशीर्वाद दिया जाता था।"[१] सिद्धान्ततः वह पति के परिवार के सदस्यों – श्वसुर, श्वश्रु, ननान्दा, तथा देवरों पर शासन करने वाली होती थी।"[२] सन्तान उत्पन्न करना और विशेष तौर पर पुत्र उत्पन्न करना उसका प्रथम तथा पति के धार्मिक एवम् सांसारिक कार्यो में उसकी सहायता करना उसका द्वितीय कर्तव्य था। पत्नी ब्राह्ममूहूर्त में उठती थी और सबको सबके कार्यो में लगाती थी। एक ऋचा में उषा का वर्णन करते हुए उसे गृहिणी के समान सोने वालों को जगाने वाली कहा गया है।"[३] घर में रहने वाले सभी लोगों की देखभाल करना भी पत्नी का कर्त्तव्य था।"[४] एक अन्य ऋक् में नदियों को पत्नी के समान क्षेम करने वाली कहा गया है।"[५]

१- गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासः । ऋ०- १०,८५,२६
२- सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि-देवेषु। ऋ०- १०,८५,४६
३- अद्यसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागत्पुरनरेयुषीणाम्। ऋक्०- १,१२४,४ ऋक्०- १,४,८,५
४- जायेव योनावरं विश्वस्मै। ऋक्०- १६६, ३
५- क्षेमं कृण्वाना जनयो न सिन्धवः। ऋक्०-१०, १२४, ७

जिससे पति तथा परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति गृहिणी की कर्त्तव्य-परायणता का बोध होता है। पत्नी को घर के पशुओं तथा घर में रहने वाले सेवकों आदि का भी ध्यान रखना पड़ता था।"[१] पत्नी पति के घर माता, पिता तथा भाइयों पर केवल शासन करने वाली (साम्राज्ञी) ही नहीं थी, वह पति के पिता अर्थात् अपने श्वसुर का सम्मान करती थी और यदि उसका पति अपने पिता से पृथक रहता था तो उसे अपने यहाँ भोजन करने के लिए आमंत्रित करती थी।

जनी शब्द का ऋग्वेद में केवल एक बार प्रयोग हुआ है, जहाँ द्यौ की पुत्री (उषस्) को 'सूनरी जनी' कहा गया है।"[२] डेब्रूक ने यहाँ जनी का अर्थ स्त्री किया है लेकिन यहाँ भी पत्नी अर्थ सम्भव है।

ऋग्वेद में समासयुक्त पदों मे 'जनि' का 'जानि' हो गया है।"[३] और सभी स्थानों में इसका पत्नी अर्थ में प्रयोग हुआ है।

'जाया' शब्द का ऋग्वेद में सर्वत्र विवाहित स्त्री के अर्थ में प्रयोग हुआ है। यज्ञ में भाग लेने अथवा गृह की स्वामिनी होने के कारण विवाहित स्त्री को पत्नी कहा जाता था।"[४]

१- शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे। ऋक्0- १0, ८५, ४३, ४४
२- प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः दिवो अदर्शि दुहिता। ऋक्0- ४.५२,१
३- पाणिनी ने "जानि" शब्द जाया से बनाया है। (जायांया निङ्. ५,४,१३४)
४- पत्युर्नो यज्ञसंयोगे। पाणिनी - ४,१,१३३

सन्तान को जन्म देने और पति के दाम्पत्य-प्रेम की पात्र होने के कारण उसे जाया कहा जाता था।''[१] जाया शब्द का ऋग्वैदिक में प्रायः 'पति' शब्द के साथ प्रयोग हुआ है।

अर्थमिद्व उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम् 'धनाभिलाषी निश्चय ही धन प्राप्त करता है, स्त्री पति को प्राप्त करती है।''[२]

स्त्री (पत्नी) को 'योषा' और इसके सदृश अन्य 'योषन' योषणा और 'योषित' शब्द विवाह योग्य अवस्था वाली युवती स्त्री के लिये प्रयुक्त हुए हैं। इनका अर्थ कहीं पुत्री और कहीं पत्नी हैं। ऋग्वेद में योषा का प्रायः पुत्री अथवा अविवाहित कन्या के अर्थ मे प्रयोग हुआ है, लेकिन कुछ स्थलों में 'पत्नी' अर्थ भी हो सकता है।''[३] 'ग्ना' पत्नी का वाचक एक अन्य है

स्त्री के लिए प्रयुक्त 'ग्ना' पदपत्नी का वाचक है जो जन धातु से निष्पन्न प्रतीत होता है।''[४] लेकिन ऋग्वेद में इस शब्द का प्रयोग केवल दिव्य पत्नियों के अर्थ में सीमित है और अधिकतर 'त्वष्टा' के साथ इसका प्रयोग हुआ है।

'त्वष्टा' ग्नाभिः सजोषा जूजुवद्रथम्' त्वष्टा दिव्य पत्नियों के साथ एक मन होकर रथ को प्रतीत करे।''[५]

१- जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुमान्। गोपथ ब्रा० पूर्व भाग १,२
२- ऋक्० - १, ११२, १५
३- ऋक्० - १०, ४०, २
४- निरुक्त- ३, २१
५- ऋक्० - २, ३१, ४

'पत्नी' पति शब्द का स्त्रीलिङ्ग है और जैसे ऋग्वेद में पति शब्द के दो अर्थ – स्वामी या शासक और पति है, वैसे ही 'पत्नी' शब्द के भी दो अर्थ –स्वामिनी, शासिका और पत्नी (विवाहिता स्त्री) हैं।

पत्नी का स्वामिनी अथवा शासिका अर्थ है। भुवन की स्वामिनी, द्युलोक की पुत्री उषा लोगो के कर्मों को देखती है।''[१]

ऋग्वेद में पति की अपेक्षा विवाहित स्त्री का अधिक उल्लेख हुआ है हे बलवान् (इन्द्र) ! हमारी बुद्धियाँ तेरा इस प्रकार स्पर्श करती है, जैसे पति की कामना करती हुई पत्नियाँ कामना करने वाले पति का।''[२]

पत्नी के वाचक शब्दों का कभी-कभी सामान्य स्त्री के अर्थ में भी प्रयोग हुआ है। 'वैदिक इण्डेक्स' के लेखकद्वय आचार्य मैक्डॉनेल तथा कीथ के अनुसार ऋग्वेद के कुछ स्थलों में जहाँ 'नारी' शब्द का 'पति' के साथ प्रयोग हुआ है।''[३] वहाँ स्पष्ट रूप से विवाह-सम्बन्ध का सकेंत किया गया है।''[४] पत्नी शब्द उत्तरवर्ती साहित्य में भी विवाहित स्त्री के लिए प्रचलित शब्द है लेकिन 'जाया' का स्थान सूत्र-साहित्य के अनुवर्ती काल में दारा शब्द ने ले लिया है।''[५]

१- अभि पश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ७, ७५, ४ ऋक्०-
२- पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन्मनीषाः । १, ६२, ११ ऋक्०-
३- १, ७३, ३, ७, २०, ५, १०, १८, ७ ऋक्०-
४- वैदिक इण्डेक्स प्रथम भाग ४४६
५- वैदिक इण्डेक्स प्रथम भाग २८६

यदि किसी पुरुष के अनेक स्त्रियाँ होती थी तो कदाचित् यज्ञ कर्म में अधिकार प्रथम विवाहित स्त्री को होता था और वही 'पत्नी' कही जाती थी। उसे कदाचित् "महिषी" (बडी) भी कहा जाता था।"[१] ब्राह्मण ग्रथों में यज्ञ के प्रसङ्ग में यजमान की स्त्री को पत्नी"[२] अन्यथा जाया"[३] कहा गया है लेकिन इस भेद का पूर्ण रूप से पालन नहीं किया गया है क्योंकि काठक ब्राह्मण"[४] और मैत्रायणी संहिता"[५] में मनु की स्त्री को "पत्नी" और शतपथ ब्राह्मण"[६] में उसे जाया कहा गया है।

१- य ई वहाते महिषीमिषिराम्। ऋक् ५, ३७, ३
२- शत० ब्रा०- १, ९, २, १४
३- शत० ब्रा०- १, १, ४, १३
४- अनया त्वा पत्न्या याजयावेति। २, ३०, १
५- मै० सं० ४, ८, १
६- मनोयाजयाव त्वेति। केनेति एतयैव जाययेति । १, १, ४, १६

ऋग्वेद के प्राचीन भाग में भी अस्तम् (घर) का केन्द्र-बिन्दु पत्नी ही है। ऋषि विश्वामित्र ने सोमपान करके हर्षित हुए इन्द्र से प्रार्थना की है: 'हे इन्द्र तुमने सोम-पान कर लिया, तुम घर जाओ। तुम्हारे घर में कल्याणी जाया प्रतीक्षा करती है।''[१] इतना ही नही, ऋषि विश्वामित्र के अनुसार पत्नी ही घर है, इसलिये वह इन्द्र से प्रार्थना करता है: मघवन् पत्नी ही घर है वही योनि है इसलिए रथ में जुड़े हुए घोड़े तुझे वहाँ ले जायें।''[२] एक अन्य ऋषि ने भी इन्द्र से यही प्रार्थना की है: ''हे इन्द्र! तुम अपने दोनो घोड़े जोड़ो ओर हवि से हर्षित होते हुए अपनी प्रिय पत्नी के पास जाओ।''[३] देवों में केवल इन्द्र की ही पत्नी की कल्पना नही की गई है अपितु सभी तैंतीस देवों को पत्नी युक्त कहा गया है।''[४] ऋग्वेद मण्डल ४ में द्यावा-पृथिवी से पत्नीयुक्त विशालगृह देने प्रार्थना की गई है।''[५] एक अन्य स्थल में अग्नि से देव-पूजक यजमानों को पत्नीयुक्त करने की कामना की गई है।''[६] ऋग्वेद के प्राचीन और अर्वाचीन भागों में अनेक बार पति की कामना करने वाली वधु अथवा जाया का उल्लेख हुआ है।''[७] ऋग्वैदिक समाज में एक पति और एक पत्नी के विवाह की ही प्रथा प्रचलित थी।

१- अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि कल्याणी र्जाया सुरणं गृहे ते ।। ऋक्०- ३, ५३, ६
२- जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिस्तदिन्त्वा युक्ता हरयो वहन्तु।। ऋक्०- ३, ५३, ४
३- तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजान्विद्र ते हरी।। ऋक्०- १, ८२, ५, १, ८२, ६
४- पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ।। ऋक्०- ३, ६, ६
५- नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषा। ऋक्०- ४, ५६, ४
६- ताल् यजत्राँ ऋतावृधोग्ने पत्नीवतस्कृधि । ऋक्०- १, १४, ७
७- ऋक्० - ४, ३, २, ५, ३७, ३ ६,८२,४ १०,७१,४ ६१,१३

बहन(स्वसा)

ऋक् संहिता में "स्वसा" शब्द का प्रयोग (भगिनी) बहन के लिए मिलता है। ऋक् संहिता में कवि बहन को भाई के लिए प्रेरणा स्रोत समझते थे और भाई अनेक पौरुष के कार्य करने के लिए बहन से प्रेरणा प्राप्त करता था। रूपक के अन्तर्गत अंगुलियों को "स्वसा" कहा गया है। यह मंत्र ऋग्वेद प्रथम मण्डल में मिलता है।"[१] ऋग्वेद के १०.१०.१२ में वर्णित है कि संसार में सबसे पवित्र सम्बन्ध भाई-बहन का है, न भाई बहन को कुदृष्टि से देख सकता है न ही बहन भाई को।"[२] अथर्ववेद में कहा गया है कि बहन के लिए भाई का होना बहुत अनिवार्य है। भाई -बहन का प्यार नैसर्गिक है। बहनों के प्रत्येक सुख-दुख में भाई सहयोगी होता है। कष्ट के समय में वह उसे आश्रय देता है। भाई, बहन का सहारा होता है, जिससे बहन अपने आपको सुदृढ़ और आनन्दमय समझती है। भाई का अभाव उसके लिए कष्टदायी है। कष्ट के दिनो में उसका सहज सहयोगी न होने से वह आत्मग्लानि और हीनता का अनुभव करने लगती है।"[३]

१- (अ) उप प्रजिन्वन्नु शतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः मनीलाः।
स्वसारः श्याबीममरुषीमजुष्रञ्चिमुच्छन्तीमुषसं न गावः।। ऋक्० - संहिता -१-७१-१
(ब) सनात्सनीला भवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृता. सहोभिः।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नी दुर्वस्यन्ति स्वसारो अह्याणम्।। ऋक्० - संहिता -१-६२-१०

२- न वा उ ते तनूं तन्वा सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्।
असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय।। ऋक्० -१०.१०.१२

३- अमूर्या यन्ति योषितो, हिरा लोहितवाससः ।
अभ्रातार इव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः ।। अथर्ववेद- १.१७.१

पणि लोग देवदूती सरमा को अपनी स्वसा मानते हुए कहते हैं कि "हे सरमा ! भयभीत देवताओं द्वारा प्रेषित तुम हमारे पास आयी हो, तुम्हें हम गोधन रूपी सम्पत्ति का हिस्सा देते हैं, अब यहीं रहो।"[१] यास्काचार्य नें 'स्वसर' की निरुक्ति 'सु + असा' अर्थात् अत्यधिक निर्भर रहने वाली माना है।"[२] ऋक् संहिता में सरस्वती को सप्तस्वसा(सात बहनों वाली) कहा गया है।"[३] एक स्थान पर अन्धकारयुक्त रात्रि को देवताओं की स्वसा कहा गया है। रात्रि को उषा की छोटी बहन के रूप में दर्शाया गया है।"[४] द्यावापृथिवी को भी स्वासारा कहा गया है।"[५]

२- जामि

ऋग्वेद में जामि शब्द का प्रयोग भाई और साधारण सम्बधियों के अतिरिक्त बहन के लिए भी प्रयोग किया गया है। निरुक्त कार यास्क ने ऋक् ३,३१,२ की व्याख्या करते हुए जामि (न जामये भगिन्यै) का अर्थ बहन (स्वस्रे) किया है।"[६] इन्द्र की स्तुति में कहा गया है कि 'हे इन्द्र यह स्तुतिकर्ता

१- एवा च त्वं सरम आजगन्थ प्रबाधिता स ह सा दैव्येन।
स्वसारं तव कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवां सूभगे भजाम्।। ऋक्० -१०-१०८-६

२- निरुक्त-११,३२

३- उत नः प्रिया सप्तस्वसा सुजुष्टा। ऋक् संहिता- ६-६१-१०

४- स्वसा स्वस्ते ज्यायस्यै योनिमारैगपेत्यस्या प्रतिचक्ष्येव।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यंवते समनगा इव व्राः।। ऋक्० - १-१२४-८

५- उत स्वसारा युवती भवन्ती आदु बूवाते मिथुनानि नाम। ऋक्० -३-५४,७

६- निरुक्त-३-६

ध्यान द्वारा तेरे लिये यज्ञ में पैर रखती हुई बहन के समान इस सुन्दर स्तुति को भेजता है।"[१] सोम की स्तुति में एक अन्य ऋक् में कहा गया है कि सामगान में निपुण, सामगान करता हुआ, विद्वान् (सोम) शब्द करता हुआ (कलश की ओर) ऐसे जाता है, जैसे कोई मित्र की बहन की ओर जाता है।"[२] समाभि जामि बहनें (अंगुलियों) बलवान् सोम को भूषित करती है तथा बलवान् बनाती है।"[३] जलों को भी अग्नि की जामि स्वसृर कहा गया है।"[४]

भाई बहन का सम्बन्ध

ऋग्वेद में भाई और बहन के द्योतक शब्द से ऐसा ज्ञात होता है कि ये पावन सम्बन्ध था। एक ही पिता की स्त्री सन्तान बहन और पुरुष सन्तान भाई कहलाता था। ऋग्वेद में इन्द्र और अग्नि पुरुष देव हैं, परन्तु उन्हें एक माता-पिता से उत्पन्न होने के कारण भ्रातरा कहा गया है।"[५]

१- इमां इन्द्र सुष्टुतिं विप्र इयर्ति धीतिभिः।
जामिं पदेव पिप्रतीं प्रा ध्वरे।। ऋक्० - ८,१२,३१

२- साम कृण्वन्त्सामन्यो विपश्चित् क्रन्दन्नेत्यभि सस्युर्नजामिम्। ऋक्० - ९-९६-२२

३- स्वसार ई जामयो मर्जयन्ति सनाभयो वाजिनमूर्जयन्ति। ऋक्० -९,८९,४

४- ऋतस्य योनावशयद् दमूनाजामीनामग्निरपसि स्वसॄणाम् । ऋक्०- ३,१,११

५- समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा। ऋक्० - ६,५९,२

ऋग्वेद के प्राचीन मण्डलों में कुल कन्याओं के विवाह आदि के विषय में पिता ने ऋग्वैदिक काल के उत्तर काल में ही उत्तरदायित्व लिया प्रतीत होता है। एक स्थान पर कुल कन्याओं के विषय में पिता की अपेक्षा भाई का अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्रतीत होता है। देवी उषस् का काव्यमय वर्णन करते हुए एक ऋषि ने कहा है।"

भ्रातृहीन बहन के समान देवी उषस् अपने रथ पर चढ़कर धन-प्राप्ति के लिए पुरुषों के सम्मुख जाती है। वह (पति) को कामना करने वाली, सुन्दर वस्त्रों से आच्छादित पत्नी के समान मुस्कराती हुई अपने रूप का प्रदर्शन करती है।"[1] भाई, बहन के केवल पालन-पोषण एवम् नैतिक आचरण के लिये ही उत्तरदायी नहीं था, बल्कि वह बहन के लिये योग्य पति का अन्वेषण करने तथा परम्परागत विधि से सम्मान पूर्ण विवाह करने के लिये भी उत्तरदायी था। भाई अपनी बहन के पति को उचित उपहार "यौतक" के रूप में प्रदान करता था। उदार देवों, इन्द्र और अग्नि की प्रशंसा में एक ऋषि ने इस प्रकार कहा है - "मैने सुना है कि तुम दोनों कुत्सित जामाता और यहाँ तक कि साले (पत्नी के भाई) से भी अधिक देने वाले हो।"[२]

१- अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः।। ऋक् - १,१२४,७

२- अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरूत वा घा स्यालात्। ऋक् - १.१०६,२

वधू

विवाह विधि के प्रसङ्ग में केवल वधू शब्द का ही प्रयोग किया जाता है। ऋग्वेद में जहाँ विवाह-विधि के प्रसङ्ग में पुरुष के लिये मर्य,वर दिधिषु, हस्त ग्राभ आदि अनेक शब्द प्रयुक्त हैं वहीं स्त्री के लिए केवल "वधू" शब्द का प्रयोग किया गया है।

वधू शब्द वध् (वह्, ले जाना) धातु से निष्पन्न माना जाता है।"[1] इसलिए "वधू" का अर्थ है 'वह स्त्री जिसे कुल में लाया जाये।' कुछ लोग वधू की निष्पत्ति बन्ध् धातु से करते हैं।"[2] कोई स्त्री कुल में लाई जाने के कारण वधू कहलाती थी। लौकिक संस्कृत एवं बोलचाल की भाषा में केवल दुल्हन को ही "वधू" नहीं कहते बल्कि, पुत्र या पौत्र की पत्नी को भी "वधू" कहा जाता है। कोई स्त्री अपने पति के कुल की वधू कही जाती है।"[3]

१- वैदिक इण्डेक्स द्वितीय भाग - २३६
२- मॉनेर विलियम्स्-संस्कृत-अंग्रजी शब्दकोश।
३- तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि पार्थिवानां।
येषां कुलेषु सविता च कुरूर्वयं च। उत्तररामचरित १,६

ऋग्वेद में वधू शब्द का प्रयोग बहुलता से हुआ है। वधू शब्द का प्रयोग विवाह की इच्छुक युवती के लिये हुआ प्रतीत होता है।"[१] डेल्ब्रूक के अनुसार विवाहित अथवा पति की कामना करने वाली स्त्री को अथवा विवाह-विधि में दुल्हन को "वधू" कहा जाता है।"[२] जब पति "वधू" के वस्त्र से अपने शरीर को आच्छादित करना चाहता है।"[३]

वधू शब्द का प्रयोग दुल्हन के लिये हुआ प्रतीत होता है।

"यह वधू सुमङ्गली है, इसके समीप एकत्र होकर आओ और इसे देखो इसके लिये सौभाग्य का आशीर्वाद पुनः देकर अलग-अलग अपने घर चले जाओ।"[४]

१- भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित्। ऋ० १०,२७,१२
२- वैदिक इण्डेक्स दूसरा भाग - २३६
३- पतिर्यद् वध्वो वाससा स्वमङ्गमभिधित्सते। ऋ० १०,८५,३०
४- सुमङ्गलीरियं वधुरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दात्त्वायाथास्तं वि परेतन ।। ऋ० १०.८५.३३

सतीप्रथा

विधवा के लिए अपने मृत पति के साथ जल कर मर जाना बड़े सम्मानित दृष्टि से देखा जाता था।

'सती' का शाब्दिक अर्थ ''अमर' हो जाना माना गया है। जो पति और पत्नी के ऐहलौकिक एवम् पारलौकिक अटूट सम्बन्ध का परिचायक है यदि इसे वैदिक प्रथा के अनुसार अभिव्यक्त करें तो इसका अर्थ धर्म के प्रति एक निष्ठ हो जाना माना जा सकता है। इस प्रथा का आरम्भ कब और कैसे हुआ यह विवाद का विषय है। पूर्ववैदिक और उत्तरवैदिक साहित्य के कुछ उदाहरणों से पता चलता है कि इस प्रथा का आरम्भ वैदिक काल ही था। सती होने के जो उदाहरण मिलते हैं। वे संदेहात्मक लगते है। ऋग्वेद में वर्णित एक मंत्र को लेकर संदेह है कि उसमें ''अग्ने'' शब्द का प्रयोग हुआ है या 'अग्रे' शब्द का। उक्त अंश का यह अर्थ कि स्त्री अपने मृत पति के शव के साथ लेटती है। तत्पश्चात् उसे सम्बोधित किया जाता है, 'नारी उठो' पुनः इस संसार में आओ।'"[1] इस वर्णन के आधार पर माना गया है कि, सती प्रथा का प्रारम्भ पूर्ववैदिक युग में ही हो गया था। उत्तरवैदिक कालीन वाङ्मय में सती प्रथा से सम्बंधित इस अर्थ को प्रमाणित करने वाले अनेक उदाहरण मिलते हैं।

१– इया नारी रविधवाः सपत्नीराजनेन सर्पिषा संविशन्तु।
अनश्रवो नयीवाः सुरत्ला आरोहन्तु जनयोयोनिमग्ने ।। ऋक्०– १०.१८.७
उदीर्प्य नार्यभिजीव लोकं गतासुमेतमुपशेष एहि।
हस्तग्रामस्य दिधिपोस्तचैव पत्युर्जेनित्वममिसवभूथ।। ऋक्०– २०,१८,८

अथर्ववेद, तैत्तिरीय संहिता और तैत्तिरीय आरण्यक में कुछ ऐसे ही प्रसंग आये हैं। अथर्ववेद में बताया गया है कि अपने मृत पति के शव के साथ विधवा नारी चिता पर आरोहण करती है और उसके बाद उसे चिता से उतर आने के लिए निर्देशित किया जाता है। अतः कहा जा सकता है कि उस युग में सती प्रथा का व्यवहार था जिसकी परम्परा इस मंत्र में है।"[1]

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में यह उल्लेख है कि मृत पति का भाई या उसका शिष्य या कोई दास विधवा स्त्री को श्मशान से घर ले आता था। इससे यही परिलक्षित होता है कि मृत पति के साथ उसकी विधवा पत्नी किसी न किसी रूप में सम्बंधित की गयी है। तैत्तिरीय आरण्यक के उद्धरणों से पता चलता है कि मृत पति के साथ विधवा स्त्री दर्शित की गई है, जिसके आगामी जीवन के सुखमय होने की इच्छा व्यक्त की गई है।"[2] गृह्यसूत्र में इस प्रथा का कोई उल्लेख नहीं है। उपर्युक्त वर्णन से पता चलता है कि पति और पत्नी में सर्वाधिक प्रगाढता थी जिससे उसकी पत्नी अंतिम समय में भी उसकी सहगामिनी होती थी।

१- इयां नारी पतिलोकं बृणानां निपद्यते उपत्वा मर्त्य प्रेतम् धर्मम् पुराण मनुपालयन्ती तस्मै प्रजा द्रवणि चेहधत।। - अथर्ववेद १९.२१

२- धनुर्हस्ता राददाना मृतस्य श्रिये ब्रह्मणे ते जसे बलाय अत्रैव त्वमिह वयं सुशेयवा; विश्वा स्पृधी भिजातीर्जेयम। - तैत्तिरीय आरण्यक ६.१

विधवा विवाह

वैदिक युग में युवा-विवाह प्रथा ही प्रचलित थी, इसलिये विधवा-विवाह या पुनर्विवाह का प्रश्न महत्वपूर्ण नही समझा जाता था। फिर भी वैदिक साहित्य के अनुशीलन से विधवा-विवाह की प्रथा के उल्लेख प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में एक स्थान पर विधवा पत्नी से कहा गया है कि "हे नारी इस मृत पति को छोड़कर इस जीवित संसार में आओ। तुमसे विवाहेच्छुक जो तुम्हारा दूसरा भावी पति है, उसके पत्नीत्व को स्वीकार करो।"[१] महर्षि यास्क ने तो निरुक्त में देवर शब्द का अर्थ द्वितीय वर दिया है। हस्तग्राभ, दिधिषु व देवर शब्द पुनर्विवाहित विधवा के दूसरे पति के सूचक हैं।"[२]

ऋग्वेद-संहिता से स्पष्ट है कि, उस समय पुनर्विवाह प्रचलित था।[३] ऋग्वेद संहिता में राजा वेन का उल्लेख है।"[४] जिसे ऋग्वेद संहिता में पृतु या पृथी कहा गया है।"[५] इस विषय में मनु का मत है कि उसने विधवाओं का विवाह जबरदस्ती करवाया था।

१- उदीर्ष्वं नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्रामस्य दिधिषीस्तवेदं पत्युर्जमित्वमाभि संबभूव ।। ऋ० १० । १८ । ८

२- विधवेव देवरं देवरः तस्माद्द्वितीयो वर उच्यते ।। निरुक्त ३ । १५

३- ऋ० १० । ८५ । ४१

४- ऋ० १० । ९३ । १४

५- ऋ० १ । ११२ । १५

अथर्ववेद में भी एक स्थान पर विधवा-विवाह का स्पष्ट उल्लेख आता है - ''जब स्त्री एक पति के पश्चात् दूसरे पति को प्राप्त होती है और वे दोनों पन्चौदन अग्नि में डालते हैं, तो उनका वियोग नहीं होता। यदि दूसरा पति अग्नि में 'अज' पञ्चौदन डालता है, तो वह अपनी पुनर्विवाहित पत्नी के साथ समान लोक में रहता है।''[१]

१- या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दतेपरम्। पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः। समान लोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः। योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणज्योतिषं ददाति । अथर्ववेद ९ - ५ । २७ - २८

नियोग

जब कोई मनुष्य निःसन्तान मर जाता था तो नियोग द्वारा उसकी विधवा को मृतक पति के भाई के द्वारा पुत्र प्राप्त करने की आज्ञा दी जाती थी। दोनों के बीच ऐसे वैवाहिक सम्बंध अस्थायी एवं सीमित थे। ये सम्बंध अधिक-से-अधिक दो सन्तान उत्पन्न होने तक रहते थे। इस प्रकार के सम्बधं की आज्ञा केवल वंश चलाने के लिए ही दी जाती थी। पुराणों की कथाओं से सिद्ध होता है कि, महर्षि दीर्घतमस्, कक्षीवान् नियोग के ही परिणाम हैं । नियोग द्वारा उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज कहलाता था। वैदिकाल के बाद इस प्रथा का समापन माना जाने लगा। ऋग्वेद-संहिता के (१,१६७,५-६) में नियोग का उल्लेख है।''[1] मैक्डॉनल और कीथ ने भी ऋग्वेद-संहिता को आधार मानकर नियोग-प्रथा का समर्थन किया है।[2]

१- (क) जोषद्यदोमसुर्या सच्ध्यै विषितस्तुका रोदसी नृम्णाः।
आसूर्येव विधतो रथं गत्तेषप्रतीका नभसो नेत्या।। ऋ० १,१६७,५
(ख) आस्थापयन्तयुवतिं युवानः शुभे नमिश्चलां विदथेषु प्रजाम्। ऋ० १,१६७,६।

२- कुहू स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः।
को वां शयुत्रा विधवव देवरं मर्य न थोषा कृणुते सधस्थ आ।। ऋ० १०।४०।२ ऋ० १०।१८।७-८

आपस्तम्ब - धर्मसूत्र में नियोग प्रथा के समर्थन में विचार प्रस्तुत किये गये हैं। -"स्त्री कुल के लिये दी जाती थीं, अतः यदि किसी कारणवश सन्तति उत्पन्न करने में परिवार का सदस्य सक्षम नहीं होता था, तो स्त्री को यह अधिकार प्राप्त था कि, वह सन्तान प्राप्ति हेतु पर पुरुष से संयोग कर सकती थी।"[१] इस समर्थन से पश्चात् भी आपस्तम्ब-धर्मसूत्र में नियोग की निन्दा की गयी है।"[२]

इन सभी ग्रन्थों से नियोग-प्रथा के प्रचलन की जानकारी मिलती है। ऋग्वेद में बताया गया है कि इसका मुख्य उद्देश्य पुत्र प्राप्ति की कामना थी।"[३]

यह प्रथा प्राचीन काल में वर्तमान थी, किन्तु धीरे-धीरे यह अप्रिय होती गई और इसका लोप हो गया।

१- कुलाय हि स्त्री प्रदीयत इत्युपदिशन्ति (आपस्तम्ब-धर्मसूत्र) २। १०। २७। ३
२- २।६।१३।५, २।६।१३।७-८, २।१०।२७।७ - (आपस्तम्ब-धर्मसूत्र)
३- ऋग्वेद - १०।८५।४१,४२

परित्यक्ता

ऋग्वेद में कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता जिसमें विवाह-विच्छेद हुआ हो परन्तु कतिपय ऋचाओं में एक पुरुष की एक से अधिक पत्नियों का उल्लेख हुआ है। एक स्थल में त्यागी गयी पत्नी का भी वर्णन मिलता है।"[1] जिससे पता चलता है कि पुरुष पत्नियों का त्याग करते थे। धर्मशास्त्र ने त्याग का अधिकार पुरुष को ही दिया है और पत्नी को प्रत्येक अवस्था में पति के अधीन रहने का आदेश दिया है।"[2] ऋग्वेद में पत्नियों द्वारा पति के त्याग का भी संकेत हुआ है। ऋग्वेद में यम की माता और महान् विवस्वान् की पत्नी सरण्यू के लुप्त हो जाने का उल्लेख हुआ है।"[3] ऋग्वेद में किसी ब्राह्मण की त्यागी गई पत्नी के पति द्वारा पुनः स्वीकार कर लिये जाने का भी संकेत है।

१- परिवृक्तेव पतिविद्यमानट्। ऋक् १०,१०२,११
२- धर्मशास्त्र का इतिहास द्वितीय भाग पेज ६१२
३- यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश। ऋक् १०,१७,१
४- ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ६५, १०, १०६

बहु-पत्नी विवाह

बहु पत्नी - प्रथा के प्रचलित होने के कई स्पष्ट उदाहरण हैं।''[१] लेकिन बहु पत्नी-विवाह की प्रथा केवल राजाओं, धनी पुरुषों तथा पुरोहितों तक ही सीमित थी। ऋग्वेद में अनेक पत्नियों द्वारा पीडित पुरुष की दुर्दशा का संकेत हुआ है।''[२] एक स्थल में दो पत्नी वाले पीड़ित पति को दो बॉसों के बीच में जुते हुए घोड़े का उपमान बनाया गया है।''[३]

बहुपत्नीत्व के कारण स्त्रियों की परिवार में निम्न स्थिति हो गयी थी तथा पुरुष अपने इस विशेषाधिकार का प्रयोग करके स्त्रियों का शोषण करता था।

१- सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः। ऋक्० - १,१०५,८,१०,३३.२
२- उभे धुरौ वहिरापिब्दमानोऽन्तर्योनेव चरति द्विजानिः । ऋक्० - १०,१०१,११।
३- ऋक्० - ७,३३,१३, ८,१७,७, १०,८५,३७,३८

बहु पति विवाह प्रथा

बहु पति विवाह

वैदिक युग में बहुपति विवाह प्रथा भी वर्तमान थी।"[१] ऋग्वेद में एक स्थल पर कहा गया है कि एक स्त्री के साथ दो पुरुष रहते थे। हो सकता है यह स्त्री गणिका रही हो।"[२] वेवर आदि कुछ पाश्चात्य के अनुसार ऋग्वेद संहिता"[३] और अथर्ववेद संहिता"[४] में उपलब्ध वर्णन से यह स्पष्ट है कि एक स्त्री के प्रसंग में पति के लिए बहुवचनान्तक पद पर दृष्टिपात कर यह विचार कर लिया गया है कि उस समय एक स्त्री एक ही समय अनेक पतियों को पति के रूप में स्वीकार करती हुयी जीवन-निर्वाह करती थीं। परन्तु यह बहुवचनान्त पद आदर सूचक प्रतीत होता है, क्योंकि संस्कृत भाषा में आदरणीय व्यक्तियों को बहुवचन में प्रयुक्त करने की परम्परा रही है। दूसरा प्रमाण ऋग्वेद संहिता में मिलता है। वहाँ एक समयावधि में एक पति और एक ही पत्नी होने की पुष्टि की गयी है। तुम दोनों पति-पत्नी इस घर में रहो और एक दूसरे से वियुक्त मत होओ।"

१- ऋग्वेद - ८ । २६ । ८
२- ऋग्वेद- १/१६७/४,५,६
३- ऋग्वेद - १०/८५/३७/३८
४- अथर्ववेद - (१४/१/४४, ५२,६,१)
(१४/२/१४,२७)

पुत्र-पौत्रों के साथ घर में आनन्द लेते हुए तुम दोनों पूर्ण आयु को प्राप्त करें।"[१]

इसकी प्रमाणिकता अथर्ववेद संहिता से भी सिद्ध होती है जहाँ इन्द्र से प्रार्थना करते हुए कहा गया है "हे देवराज इन्द्र! इस जीवन में इस दम्पति को अच्छी प्रेरणा दो और ये दोनों चक्रवाक एवं चक्रवाकी की तरह प्रेम करते हुए सुसन्तति के साथ पूर्ण आयु का उपभोग करें।"[२]

वैदिक व्यवस्था पितृ प्रधान परिवार के सिद्धान्त पर आधारित थी, जिसमें बहुपति विवाह प्रथा के लिये कोई स्थान नहीं था।

१- ऋग्वेद - इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे।। ऋक्०- १०। ८५।४२

२- इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पति
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुवर्यश्नुताम् ।। अथर्व०- १४।२। ६४

स्वैरिणी

उपनिषद् काल में स्वैरिणी स्त्रियां सर्वथा नहीं थी, ऐसा नहीं कहा जा सकता । केकर नरेश अश्वपति ने कहा है कि मेरे राज्य में कोई व्यभिचारी पुरुष या व्यभिचारिणी स्त्री नहीं हैं।"[१] फिर भी हमें स्त्रियों के यथेष्ट व्यवहार का संकेत भी प्राप्त होता है। बृहदारण्यक उपनिषद्"[२] में एक धार्मिक विधि की चर्चा है। वह चर्चा उस व्यक्ति को दण्डित करने के लिए है जिसने किसी गृहस्थ विद्वान् की पत्नी से सम्बन्ध कर लिया है। उससे द्वेष करने को भी कहा गया है। धार्मिक विधान द्वारा दण्डित करने का उपक्रम कुछ आश्चर्य मूलक है। वैदिक इण्डेक्स के लेखकों आचार्य मैक्डोनेल तथा ए०बी० कीथ ने बृहदारण्यकोपनिषद् की वंश तालिका में मातृनामोद्गत ऋषियों के अभिधानों से भी अवैध सम्बधों का निष्कर्ष निकाला है। सत्यकाम जाबाल का प्रकरण भी उसकी माता जाबाला के स्वैरिणी होने की बात की पुष्टि करता है।

१- छान्दोग्य उपनिषद् -५-११-५।
२- बृहदारण्यक उपनिषद् ७-४१-२।
३- वैदिक इण्डेक्स प्रथम भाग

स्त्री का सम्पत्ति पर अधिकार

वैदिक युग में स्त्रियों को सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त था या नहीं यह वैदिक संहिताओं से स्पष्ट नहीं होता है। ऋग्वेद के एक मंत्र में यह संकेत अवश्य विद्यमान है कि सन्तान न होने पर पति के बाद पत्नी को ही सम्पत्ति की अधिकारिणी माना जाता था। इस मंत्र में अन्य स्त्री के गर्भ से उत्पन्न सन्तान को दत्तक पुत्र बनाकर उसे सम्पत्ति प्रदान करना बहुत उचित नहीं माना गया है।''[१] जिससे स्पष्ट होता है कि दत्तक पुत्र की तुलना में स्त्री का सम्पत्ति पर अधिकार होना वैदिक युग मे अभीष्ट था। परन्तु भाई होने की दशा में पुत्री का पिता की सम्पत्ति में कोई अधिकार नही था। ऋग्वेद के एक मंत्र के अनुसार औरस पुत्र के होने पर उसकी भगिनी का पिता की सम्पत्ति में कोई भाग प्राप्त नही होता था।''[२] कभी-कभी स्त्रियाँ अपने सम्पत्ति विषयक अधिकार के लिए न्यायालय भी जाती थीं।''[३]

१- न हि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ।
अथा चिदोकः पुनरित्स पत्या नो वाज्यभीषा ळेतु नव्यः ।। ऋ० ७।४।८।१२

२- न जामये तान्वो रिक्थमारैच्चकार गर्भं सबितुर्निधानम्।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्ये।। ऋग्वेद ३।३१।१२

३- अथर्ववेद १४.१.२।

पर यदि माता-पिता की सन्तान केवल कन्याएँ ही हों, तो वे ही पैतृक सम्पत्ति की अधिकारिणी मानी जाती थीं। विवाह हो जाने पर भी कन्या धन प्राप्त करने के लिए पितृकुल में आया करती थी।"[१] यदि कोई कन्या विवाह न करे और पृतकुल में ही रहे, तो भाई होने की दशा में भी पैतृक सम्पत्ति में उसका हिस्सा माना जाता था। ऋग्वेद के एक मंत्र में प्रार्थना की गई है कि हे इन्द्र ! मैं आपसे उसी प्रकार धन की याचना करता हूँ जैसे कि माता-पिता के साथ रहने वाली और पिता के घर में ही बूढ़ी हो जाने वाली कन्या पिता के घर में अपना हिस्सा माँगती है।"[२] धीरे-धीरे इस दशा में बदलाव आ गया। ब्राह्मण काल आते-आते स्त्रियों को पैतृक सम्पत्ति के अधिकार से दूर रखने की प्रवृत्ति पनपने लगी। इसीलिए तैत्तिरीय संहिता में यह कहा गया है कि स्त्रियाँ अदायादी होती हैं और उन्हें दाय की इच्छा नहीं करनी चाहिए।"[३] शतपथ ब्राह्मण में भी पत्नी को दाय से वंचित कहा गया है।"[४]

१- अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्। ऋग्वेद १,१२४,७

२- अमाजूरिवं पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम्।
कृधि प्रकेतमुष मास्या भर दद्धि तन्वो येन मामहः।। ऋग्वेद २,१७,७

३- तैत्तिरीय संहिता, ६।५।८।२

४- शतपथ ब्राहण, ४।४।२।१३

तृतीय अध्याय

वैदिक नारी एवं संस्कार

संस्कार शब्द का अर्थ

''संस्कार'' शब्द प्राचीन वैदिक साहित्य में नहीं मिलता है। परन्तु वैदिक -संहिताओं में इससे सम्बंधित ''गर्भाधान, नामकरण, उपनयन आदि संस्कारों का वर्णन अवश्य मिलता है।''[१] जैमिनी के मीमांसा दर्शन में ''संस्कार शब्द'' कई बार प्रयुक्त हुआ है। मीमांसा दर्शन में ''संस्कार शब्द उपनयन के लिए प्रयोग किया गया है।''[२]

संस्कार शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा के ''सम्'' उपसर्गपूर्वक ''कृञ्'' धातु से ''घञ्'' प्रत्यय लगाने से हुयी है। संस्कार का सम्बन्ध हमारी समस्त सभ्यता एवम् संस्कृति की जननी वैदिक-संहिताओं से जुड़ा हुआ है। जीवन के सर्वाङ्गीण विकास या सिद्धि का नाम ही संस्कार है। मीमांसा दर्शन के भाष्यकार शबर स्वामी के अनुसार संस्कार का लक्षण है, ''जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के लिए योग्य हो जाता है।[३]

कुमारिल भट्ट के तंत्रवार्तिक के अनुसार ''संस्कार वे क्रियाएँ तथा रीतियाँ हैं, जो योग्यता प्रदान करती है।''[४]

१-(अ) यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे - अथर्वसंहिता ६।१७।१
(ब) कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि - यजु० ७।२६।
(स) आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्त्रः - अथर्व० ११।५।३

२- जैमिनि० ६.१.३५।।

३- संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य ।। मीमांसा० शबर० ३.१.३।।

४- योग्यता चादवानाः क्रियाः संस्कारा इत्युच्यन्ते।। तन्त्रवार्तिक

इस प्रकार संस्कार का शाब्दिक अर्थ परिष्कार या संस्करण है, अशुद्ध या अपवित्र को शुद्ध एवं पवित्र बनाना १६ संस्कारों के द्वारा जीवात्मा को पवित्र करने की विधियाँ वर्णित हैं।

संस्कारो की संख्या एवं नाम

स्मृतिकारों ने संस्कारों की संख्या भिन्न-भिन्न गिनाई है। इनके ४० नामों को गौतम ने इस प्रकार उल्लिखित किया है।

१. गर्भाधान २. पुंसवन ३. सीमन्तोन्नयन ४. जातकर्म ५. नामकरण ६. अन्नप्राशन ७. मुण्डन (चौल) ८. उपनयन ६. ऋग्वेद का आरम्भ १०. यजुर्वेद का आरम्भ ११. सामवेद का आरम्भ १२. अथर्ववेद का आरम्भ (ये चार वेद व्रत हैं) १३. समावर्तन १४. विवाह १५. देवयज्ञ १६. पितृयज्ञ १७. अतिथि यज्ञ या मनुष्य १८. बलिवैश्यदेव यज्ञ या भूतयज्ञ १९. ब्रह्मयज्ञ (ये पाँच महायज्ञ) २०. अष्टका (अगहन बदी-अष्टमी का श्राद्ध) २१. पार्वण (पूस बदी ७ का श्राद्ध) २२. श्राद्ध (माघ बदी ८ का श्राद्ध) २३. श्रावणी २४. आग्रहायणी २५. चैत्री (चैत्र की पूर्णमासी का यज्ञ) २६. आश्वयुजी (अश्विन की पूर्णमासी का यज्ञ) २७. अग्न्याधान (अग्नियों का स्थापन) २८. अग्निहोत्र २६. दर्शपौर्णमास यज्ञ ३०. आग्रयण (नवान्नेष्टि) ३१. चातुर्मास्य ३२. निरूढ़ पशुबन्ध ३३. सौत्रामणी (ये सात हविर्यज्ञ हैं) ३४. अग्निष्टोम ३५. अत्यग्निष्टोम ३६. उक्थ्य ३७. षोडशी ३८. वाजपेय ३६. अतिरात्र ४०. अप्तोर्याम (ये सात सोमयज्ञ है)।[१] बुद्ध स्मृति में भी इन ४० संस्कारों का वर्णन है।[२]

१- चत्वारिंशत् संस्काराः। गौतम० ८.३।
२- बुध० अ०१।

व्यास स्मृति में १६ संस्कार गिनाये गए हैं – १. गर्भाधान २. पुंसवन ३. सीमन्तोन्नयन ४. जातकर्म ५. नामकरण ६. निष्क्रमण ७. अन्नप्राशन ८. मुण्डन ६. कर्णवेध १०. उपनयन ११. वेदारम्भ १२. केशान्त १३. समावर्तन १४. विवाह १५. विवाह की अग्नि का ग्रहण १६. दक्षिणाग्नि गार्हपत्य और आहवनीय इन तीन अग्नियों का ग्रहण।"[1]

याज्ञवल्क्य संहिता में भी १६ संस्कारों का परिगणन है।

१. गर्भाधान, २. पुंसवन, ३. स्पन्दन अर्थात् सीमन्तोन्नयन ४. जातकर्म, ५. नाम्मकरण ६. सूर्यविक्षण अर्थात् निष्क्रमण, ७. अन्नप्राशन, ८. चूड़ा अर्थात् मुण्डन, ६. कर्णवेध, १०. ब्रह्मसूत्र, उपनयन, ११. व्रत अर्थात वेदारम्भ, १२. विसर्जन अर्थात् समावर्तन, १३. केशान्त, १४. विवाह, १५. चतुर्थी कर्म, १६. अग्निसंग्रहण अर्थात् दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय अग्नियों का ग्रहण।"[2]

इस प्रकार स्मृतियों में १६ संस्कारों और ४० संस्कारों का वर्णन है। बुद्ध और गौतम ने जो ४० संस्कार दिए है, उनमें से ४ वेदव्रत संस्कार है, ये वेदारम्भ के अन्तर्गत आते है। ५ दैनिक यज्ञ है जो महायज्ञ कहलाते हैं। ७ पाकयज्ञ, ७ हविर्यज्ञ है। ७ सोमयज्ञ हैं। ये २१ संस्कार नैमित्तिक यज्ञ हैं, जो यदा-कदा किये जाते हैं। व्यास और याज्ञवल्क्य ने १६ संस्कार दिए है। मनु के द्वारा उल्लिखित है कि, गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक संस्कारों की परम्परा है।[3]

१- व्यास०- १.१३-१४
२- ब्रह्मोक्त याज्ञ० सं०- ८.३५६-३६१
३- निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः।। मनु० २.१६

इनमें वानप्रस्थ, संन्यास, अन्त्येष्टि आदि भी लिए जाते है। इस प्रकार गृह्यसूत्रों आदि से समर्थित १६ संस्कार ये हैं- १. गर्भाधान, २. पुंसवन, ३. सीमन्तोन्नयन, ४. जातकर्म, ५. नामकरण, ६. निष्क्रमण, ७. अन्नप्राशन, ८. चूड़ाकर्म, ९. कर्णवेध, १०. उपनयन, ११. वेदारम्भ, १२. समावर्तन, १३. विवाह, १४. वानप्रस्थ, १५. संन्यास तथा १६. अन्त्येष्टि। कतिपय सूत्रग्रन्थों में संस्कारों की संख्या इस प्रकार गिनायी गयी है।

आश्वलायन-गृह्यसूत्र-

१. विवाह, २. गर्भाधान, ३. पुंसवन, ४. सीमन्तोन्नयन, ५. जातकर्म, ६. नामकरण, ७. चूड़ाकर्म, ८. अन्नप्राशन, ९. उपनयन, १०. समावर्तन, ११. अन्त्येष्टि।

पारस्कर - गृह्यसूत्र -

१.विवाह, २. गर्भाधान, ३. पुंसवन, ४. सीमन्तोन्नयन, ५. जातकर्म, ६. नामकरण, ७. निष्क्रमण, ८. अन्नप्राशन, ९. चूड़ाकर्म, १०. उपनयन, ११. केशान्त, १२. समावर्तन, १३. अन्त्येष्टि।

बौधायन-गृह्यसूत्र -

१. विवाह २. गर्भाधान, ३. पुंसवन, ४. सीमन्तोन्नयन, ५. जातकर्म, ६. नामकरण, ७. उपनिष्क्रमण, ८. अन्नप्राशन, ९. चूड़ाकर्म, १०. कर्णवेध, ११. उपनयन, १२. समावर्तन, १३. पितृमेध।

वाराह-गृह्यसूत्र

१. जातकर्म, २. नामकरण, ३. दन्तोद्गम, ४. अन्नप्राशन, ५. चूड़ाकर्म, ६. उपनयन, ७.वेदव्रतानि, ८. गोदान ९. समावर्तन, १०. विवाह, ११. गर्भाधान, १२. पुंसवन, १३. सीमन्तोन्नयन।

वैखानस - गृह्यसूत्र

१. ऋतुसङ्गमन, २. गर्भाधान, ३. सीमान्त, ४. विष्णुबलि, ५. जातकर्म, ६.उत्थान, ७. नामकरण, ८. अन्नप्राशन, ९. प्रवसागमन, १०. पिण्डवर्धन, ११. चौलकर्म, १२. उपनयन १३. पारायण १४. व्रतबन्धविसर्ग, १५. उपाकर्म, १६. उत्सर्जन, १७. समावर्तन, १८. पाणिग्रहण।

षोडश - संस्कार

वैदिक साहित्य में सोलह संस्कारों का ही सर्वाधिक प्रचलन और वर्णन मिलता है। याज्ञवल्क्य ने केशान्त को अमान्य करते हुए मनुस्मृति का ही समर्थन किया है। मीमांसा दर्शन में इन्हीं १६ संस्कारों को स्वीकार करते हुए उन्हें दो भागों में विभाजित किया गया है। महर्षि अंगिरा ने अपने स्मृति ग्रन्थ में २५ संस्कारों का वर्णन किया है। मनु, याज्ञवल्क्य और जातुकर्ण्य अन्त्येष्टि को संस्कारों की सूची में गणना करते हैं। उनके अनुसार - अन्त्येष्टि सम्बन्धी मंत्रो का संकलन मुख्यतः अन्त्येष्टि - सम्बंधी वैदिक मंत्रो में से किया गया है।"[1]

१- (अ) निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः - मनु स्मृ०- ११,१६
(ब) ऋग्वेद- १०, १४ १६.१८
(स) अथर्ववेद- १८, १-४

संस्कार के विषय में मनु ने कहा है कि, "ब्राह्मीयं क्रियते तनुः"[1]

संस्कारों का लक्ष्य जीव-शरीर को ब्रह्म लाभ (ब्रह्मज्ञान) के योग्य बनाना है।

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी "संस्कार विधि" में सोलह संस्कारों का समावेश किया है। भीमसेन शर्मा ने भी अपनी रचना "षोडश-संस्कार-विधि" में केवल सोलह संस्कारों की गणना की है।

१- स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।। मनुस्मृति- २,३०

संस्कारों का संक्षिप्त परिचय

(१) गर्भाधान

जन्म से पूर्व कुछ पुण्यकर्म किये जाते हैं जिसकी चर्चा भगवान् मनु के इस "स्मृति ग्रन्थ" में है। "ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य लोगों का शरीर सांसारिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से पवित्र बनाने के लिए वैदिक विधि-विधान से गर्भाधान, जातकर्म तथा नामकरण आदि सभी संस्कार करने चाहिए।"[1] एक स्थान पर "भाष्यकार सायण" इसका नाम "चतुर्थीकर्मणि" दिया है।"[2] गर्भाधान-संस्कार से बीज तथा गर्भ सम्बंधी सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। इस संस्कार का वर्णन विवाह काण्ड"[3] में भी मिलता है। पूर्वमीमांसा"[4] में गर्भाधान-संस्कार पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि, "जिस कार्य द्वारा पुरुष स्त्री के गर्भ में अपना बीज स्थापित करता है, उसे गर्भाधान कहा जाता है।" एक मंत्र में कहा गया है कि जिस प्रकार महान् पृथिवी सम्पूर्ण प्राणियों को गर्भ में धारण करती है, उसी प्रकार मैं तुम्हारे गर्भ को स्थापित करता हूँ मैं तुम्हें रक्षण के लिए बुलाता हूँ।"[5]

१- वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्यः शरीर संस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च।। मनु० (२.२८)

२- सायण अथर्ववेद के १४ काण्ड की भूमिका।

३- सायण अथर्ववेद के १४ काण्ड की भूमिका।

४- गर्भः संधार्यते येन कर्मणा तद गर्भाधानमित्यनुगतार्थ कर्मनामधेयम् (पूर्वमीमांसा-१-४-२)

५- यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे।
एवा दधामि ते गर्भ तस्मै त्वामवसे हुवे।। अथर्ववेद- १५,२५,२

आचार्य शौनक ने स्त्री की प्रधानता व्यक्त करते हुए कहा है कि "स्त्री अपने पति द्वारा प्रदत्त शुक्र को जिस कार्य में धारण करती है, उसे गर्भालम्बन कहा जाता है।"[१] अथर्ववेद में कहा गया है कि, "हे सिनी वाली गर्भ स्थापित करो। हे सरस्वती गर्भ धारण कराओ, तुम्हारे गर्भ को नीलकमल माला धारण करने वाले दोनों अश्विनी कुमार धारण करावें।"[२] इन्द्र से प्रार्थना की जाती थी कि, ये दम्पति युगल चक्रवाको के समान साथ-साथ अपने एश्वर्य से युक्त गृह में जीवन पर्यन्त रहे।"[३] पति अपनी पत्नी को सम्बोधित करते हुए कहता था "मै पुरुष हूँ, तू स्त्री है, मैं साम हूँ, तू ऋचा है, मैं आकाश हूँ, तू पृथिवी है, इस प्रकार हम दोनों एक साथ निवास करेंगे। अभी सन्तान उत्पन्न करना।"[४] अथर्ववेद में वधू द्वारा अपने पति को गर्भाधान संस्कार के पहले मनु-जात वस्त्र पहनाने का वर्णन है।"[५] वस्त्र धारण करने के पश्चात् पुरुष अपनी नववधू को पलंग पर आरूढ़ होने के लिए कहता है। "इस शय्या पर बैठो, पति के लिए सन्तान उत्पन्न करो, इन्द्राणी की तरह सुखपूर्वक प्रातः जागते समय उषा की प्रतीक्षा करो।"[६]

१- निषिक्तो यत्प्रयोगेण गर्भः संघार्यते स्त्रियाः। (आचार्य शौनक)

२- गर्भं धेहि सिनीवलि गर्भं धेहि सरस्वती।
गर्भं ते अश्विनौ देवाधत्तां पुष्करस्रजा ।। अथर्ववेद - ५,२५,३,

३- इहेमाविन्द्र संनुद चक्रवाकेव दंपती।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम्।। अथर्ववेद - १४,२,६४

४- अमोऽहमास्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक्त्वं द्यो रहं पृथिवी।
त्वम् ता विह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ।। अथर्ववेद - १४.२.७१

५- अभि त्वा मनु जातेन दधामि मम वाससा।
यथासो मम केवलो नान्यसां कीतिशाश्चन ।। अथर्ववेद - ७.३७

६- आरोह तल्पं सुमनस्य मानेह प्रजां जनम पत्ये अस्मै।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि - अथर्ववेद - १४,२,३

वैदिक संहिता में कहा गया है कि सन्तानोपत्ति के समय स्त्री और पुरुष के चित्त में जिस प्रकार भावना होगी सन्तान भी उसी प्रकार की भावना से युक्त होकर जन्म लेगी। अगर उस समय स्त्री पुरुष कामुक होगें तो कामुक संतान होगी अगर धार्मिक भावना से युक्त होगें तो संतान धार्मिक होगी।

इसी भावना से ऋग्वेद संहिता में देवताओं से प्रार्थना की गयी है। जिसमें कहा गया है कि, "पोषणकारी सूर्य और रुद्र योनियों की कल्पना करें। शक्तिशाली विष्णु गर्भग्रहण करने का स्थान प्रदान करें, देव शिल्पी त्वष्टा रूप का मिश्रण करें, प्रजापति सिंचन एवं सृष्टि-कर्ता गर्भ का संगठन करें।"[१]

वैदिक काल में देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण आदि की मान्यता थी। इसकी चर्चा तैत्तिरीय संहिता में मिलती है।"[२] ऋग्वेद में कहा गया है कि उस समय पुरुष अपनी पत्नी के पास जाता था, गर्भाधान-हेतु उसे आमन्त्रित करता था और देवताओं से प्रार्थना करता था कि उसकी पत्नी के गर्भ में भ्रूण स्थापित हो।"[३]

१- ओं पूषा भगं सविता में ददातु रुद्रः कल्पयतु ललामगुम् । ओं विष्णुर्योनि कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भ दधातु ते।। ऋक् संहिता

२- जायमानो वै ब्राह्मस्त्रिभिऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजयापितृभ्यः। एष वा आनृणो यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारीवा स्यादिति। तैत्तिरीय संहिता - ६/३/१०/५

३- तां पूषन् शिवतामामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति।
या न उरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेषम्।।(ऋ० १०/८५/३७)

शास्त्रानुसार

गर्भाधान संस्कार सम्पन्न करते समय शुभ-मुहूर्त के नक्षत्र और तिथि का ध्यान रखना आवश्यक है, क्योंकि इसका प्रभाव सन्तान पर पड़ता है। यही कारण है कि मनु स्मृति में अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा और रिक्ता तिथि को छोड़ने के लिए कहा गया है, अर्थात् इन तिथियों को यह संस्कार सर्वदा अमान्य घोषित है।

पुंसवन

पुंसवन नामक इस द्वितीय संस्कार को "प्राजपत्य संस्कार" भी कहा गया है।[१] पु = पुमान् नर की कामना से जो संस्कार किया जाता था उसे पुंसवन संस्कार कहा जाता था। अथर्ववेद में पुमान् सन्तति को उत्पन्न करने की अभिलाषा व्यक्त की गयी है।[२] पुंसवन में पुत्र की प्राप्ति के लिये कुछ कृत्य किये जाते थे। एक मंत्र से ज्ञात होता है कि, इस उत्सव को शमी और अश्वत्थ वृक्षों के तले मनाया जाता था।"[३] आचार्य शौनक के अनुसार पुंसवन-संस्कार गर्भाधान होने के दूसरे या तीसरे महीने में किया जाता था।[४] वीर-सन्तति गर्भावस्था में सुरक्षित रहे, इसके लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के उपचार किये जाते थे। जैसे - दधिप्राशन, नासावेध, अग्नि प्रदक्षिणा, उदर स्पर्श, फल स्नान आदि क्रियाएँ वीर पुत्र की कामना से की जाती है। गर्भस्थ बालक की रक्षा के लिए वैदिक संहिताओ में भी कुछ उपचार बताएं गये है। १- मांगालिक सूत्र एवं २- औषधि प्रयोग। जिससे गर्भस्राव या पतन का भय नहीं रहता।

१- कृणोमि ते प्राजापत्यमा योनिं गर्भ एतु ते।(अथर्व० ३।२३।५)

२- पुंमासं पुत्रं जनयतं पुमाननु जायताम्।
भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान् ।(अथर्व० ३।२३।३)

३- शमीमश्वत्थ आरूढ़स्तत्र पुंसवनं कृतम्।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्स्त्रीष्वाभरामषि।।(अथर्व० ६।११।१)

४- व्यक्ते गर्भे द्वितीये तु मासे पुंसवनं भवेत्।
गर्भे व्यक्ते तृतीये चतुर्थे मासि वा भवेत्।। (आचार्य-शौनक)

आयुर्वेद में कहा गया है कि वटवृक्ष में ऐसे गुण है, जिनसे गर्भ के समय सभी विकारों का बचाव होता है। इसलिए स्त्री को वटवृक्ष के मूल का सेवन करना चाहिए। "पुत्र की प्राप्ति की अभिलाषा से सुलक्ष्मणा, वटशुङ्ग , सहदेवी एवं विश्वदेवी में से किसी एक औषधि को दूध में घोंटकर उसके रस की तीन या चार बूँदें गर्भिणी के दायें नासापुट में छोड़नी चाहिए।"[१]

पारस्कर-गृह्यसूत्र के अनुसार इस संस्कार के अवसर पर गर्भवती की प्रसन्नता के लिये उत्सव का समायोजन किया जाता था। गर्भ में बालक की रक्षा के लिए गर्भिणी स्त्री को वटवृक्ष की जटा या उसकी पत्ती लेकर दक्षिण नासिका-पुट से सुघाने का विधान है। स्त्री की मानसिक स्थिति को ठीक रखने हेतु गिलोय, ब्राह्मी औषधि और सुंठी को दूध में मिला कर पिलाने की बात कही गयी है। जिससे गर्भस्थ शिशु की रक्षा हो।

यह संस्कार पुत्र-प्राप्ति की इच्छा का द्योतक है, अर्थात् इसे पुत्र उपलब्धि हेतु विशेष रूप से करने का विधान है।"[२] शौनक द्वारा रचित वीरमित्रोदय-संस्कार-प्रकाश, भाग १ में पुंसवन को पुत्र-प्राप्ति से सम्बद्ध संस्कार कहा गया है।"[३]

१- लब्धगर्भायाश्चैतेष्वहःसु लक्ष्मणा - वटशुङ्गसहदेवी-विश्वदेवानामन्यतमं क्षीरेणाभिघुटय
त्रीश्चतुरो वा बिन्दून् दद्यादक्षिणे नासापुटे पत्रकामायै न च तन्निष्ठीवेत्। सुश्रुत, शारीरस्थान-२

२- यं परिहस्तमबिभरदितिः- पुत्रकाम्या।
त्वष्टा तमस्या आवध्नाद्यथा पुत्रं जनादिति।। (अथर्व० ६।८१।३)

३- पुमान् प्रसूयते येन कर्मणा तत् पुंसवनमीरितम्। (वीरमित्रोदय भाग-१ पृष्ठ संख्या १६६)

अथर्वसंहिता में ऋषभ आदि औषधियों के सेवन का विवरण है। जिससे स्पष्ट होता है कि, ये औषधियाँ स्त्री को पुत्रोत्पत्ति हेतु खिलाई जाती थी।"[१]

पुंसवन संस्कार में कुछ अनुष्ठान भी किये जाते थे "जिससे तुम बन्ध्या हो गई थी, उस दोष को तुम्हारे अन्दर से नष्ट करता हूँ। उसे हम तुमसे बहुत दूर अन्यत्र स्थापित करते है।"[२] अतः इससे कदाचित् पुंसवन की विधि पर प्रकाश पड़ता है। दूसरे मंत्र में बाण का उल्लेख है जो सम्भवतः इस संस्कार का आधार था, "तुम्हारी योनि में पुरूष गर्भ आवे, जैसे बाण निषंग में आता है। दश महीने के पश्चात् तुम्हें वीर पुत्र उत्पन्न हो।"[३] अन्यत्र धातृदेव से प्रार्थना की गई है कि वे हृष्ट पुष्ट सुगठित रूप वाला पुत्र दसवें माह में उत्पन्न करने के लिए इस स्त्री में श्रेष्ठ रूप धारण करावें।"[४] गर्भिणी स्त्री को किसी प्रकार की औषधि भी इस मंत्र के साथ दी जाती थी – 'जिन वीरूधों (पौधों) का द्यौः पिता है, पृथिवी माता है तथा समुद्र मूल है, वे दिव्य औषधियाँ पुत्र की प्राप्ति में तेरी सहायता करें।[५]

१- यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति च।
तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनु का भव।।(अथर्व ३।२३।४)

२- येन वेहद् बभूविथ नाशयामसि तत्त्वत्।
इदं तदन्यत्र त्वदप दूरे नि दध्मसि।।(अथर्व ३।२३।१)

३- आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान्वाण इवेषुधिम्।
आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः।। (३-२३-२)वही

४- धातः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः।
पुमांस पुत्रमां धेहि दशमे मासि सूतवे।। (५,२५,१०)

५- यासां द्यौः पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरूधां बभूव।
तास्त्वा पुत्रविद्याय दैवीः प्रावक्त्वोषधयः।। (३,२३,६ वही)

गर्भावस्था के तीसरे या चौथे मास के भीतर ही यह संस्कार करना उचित माना गया है। जिसका मुख्य उद्देश्य शिशु की रक्षा करना है।

इन सम्पूर्ण मंत्रो से अब यह स्पष्ट हो गया है कि पुंसवन के लिये अनेक विधान प्रयुक्त होने लगे थे और इस संस्कार के प्रमुख तत्व अथर्ववैदिक काल में विद्यमान थे। फिर भी इस संस्कार के विविध पार्श्वो के नियामक परवर्ती विधियों का स्पष्ट प्रसंग नहीं प्राप्त होता है।"[1]

१- हिन्दू संस्कार - डॉ० राजबली पाण्डेय, पृ ७४।

३- सीमन्तोन्नयन

गर्भ धारण के पश्चात् रोग, व्याधि और पापों के कारण गर्भपात हो जाता है। अतः अथर्ववैदिक समाज में गर्भ संरक्षण के लिए औषधियों का सेवन और प्रार्थनायें की जाती थी। इस कार्य के लिए अथर्ववेद में २६ मंत्रो का एक सूक्त प्राप्त होता है।"[1] इस सूक्त से परवर्ती संस्कार सीमन्तोन्नयन पर प्रकाश पड़ता है।"[2] गर्भ धारण के पश्चात् उनमें तरह-तरह के रोग कीटाणु पहुँचकर हानि पहुंचाते थे। इसलिए औषधियों से उन्हें नष्ट किया जाता था।"[3]

१- सूक्त ८.६। कौशिक (८.२४) इस सूक्त के साथ सूक्त २,२ और ६.१११ को भी इसी कार्य के लिये उद्धृत करते है। सूक्त २,२ में गन्धर्वो की प्रार्थना की गई है परन्तु इससे इस विषय पर स्पष्ट विवरण नहीं मिलता। इसी प्रकार सूक्त ६.१११ भी अनावश्यक प्रतीत होता है।

२- कौशिक ने इस सूक्त को मातृनामानि संस्कार के लिये प्रयुक्त किया है। 'यौ ते मातेति मातृनामानि, कौ० सू० ८,२४ पृ० ९६ ब्लूमफील्ड, वाल्तिमोयर १८८९। इसी स्थल पर पाद टिप्पणी में अथर्ववेद पद्धति को उद्धृत किया गया है जहाँ उल्लेख है, 'अयं सीमन्तोन्नयनमुच्यते। अष्टमे मासि कर्म कुर्यात। पद्धतियाँ बहुत बाद की है परन्तु उनका यह कथन कि इसका प्रयोग सीमन्तोन्नयन में होता था उचित प्रतीत होता है व्हिटने अथर्ववेद का अनुवाद पृ० ९३।

३- कुसुला ये च कुक्षिलाः करुमाः स्त्रिमाः।
तानोषधे त्वं गन्धेन विषुचीनान्वि नाशय।। ८,६,१० अथर्ववेद।

यह संस्कार राक्षसों, दानवों आदि से गर्भ की रक्षा के लिये सम्पन्न किया जाता था।"[१] 'हे स्त्री, तूने जो (गर्भ) धारण किया है वह गिरे नहीं, तुम्हारे नीचे पहनने वाले वस्त्र में बँधी हुई यह औषधि गर्भ की रक्षा करें।"[२] उत्तम एवं स्वस्थ संतति की प्राप्ति हेतु इस संस्कार के सम्पन्न करने का संकेत ऋग्वेद-संहिता में मिलता है जिसमें कहा गया है कि - "मै (पति) दानशीला, आह्वान के योग्य, सौभाग्यवती पत्नी को मधुर वचनों से बुलाता हूँ। वह मेरे आह्वान को सुने और समझे तथा न टूटने वाले प्रजनन-कार्य से मुझे प्रशंसनीय वीर-सन्तान प्रदान करें।"[३] जो औषधि गर्भ की रक्षा करती है उसका नाम बज है।"[४] गर्भ रक्षक देवताओ में इन्द्र की स्तुतियाँ सर्वाधिक है।"[५] (असुर) पुरूष का कच्चा मांस खाने वाले हैं। ये गर्भ का भक्षण करने वाले हैं।"[६]

१- हिन्दू संस्कार-राजबली पाण्डेय - पृष्ठ ७८।

२- परिसृष्टं धारयतु यद्धितं माव पादि तत्।
गर्भं तं उग्रो रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ।। अथर्व० - ८,६,२०।

३- राकामंह सुहवाँ सुष्टुती हुवे श्रृणोतु नः सुभगा बोधतुत्मना।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदानमुक्थ्यम्। ऋग्वेद - २।३२।४।

४- कृणोम्यस्यै भेषजं बजं दर्णामचातनम् । अथर्व० - ८,६,३।

५- स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय। अथर्व०- ८,६,१३

६- य आमं मांसमदन्ति पौरेषेयं चये क्रविः।
गर्भान्खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि। वही ८,६,२३

जो असुर गर्भ को क्षति पहुँचाते हैं उनकी बनावट का वर्णन करते हुए कहते है कि, वे काले बालों वाले हैं और उनके हाथों में सींग रहती है वे अट्टहास करते हैं।[1] इस अवसर पर पिंग से प्रार्थना की गई है।[2] कि 'हे पिंग, जो कोई भी स्त्री के गर्भ को पीड़ित करता है; उसे मै मारता हूँ। तुम तीव्र बाण बनकर उसके हृदय में चुभ जाओ।[3] इससे पता चलता है कि, इस कार्य में मंत्रसिद्ध श्वेत पीत सर्षप का प्रयोग होता था। उनका ऐसा विश्वास था कि यह पीला सरसों गर्भ में पुत्र की रक्षा करता है और उसे कन्या नहीं बनाता हैं।[4] सन्तति के जन्म से पूर्व किये जाने वाले तीन प्रमुख संस्कारों में "सीमन्तोन्नयन" नामक अन्तिम संस्कार है। अर्थात् "गर्भाधान" और "पुंसवन" संस्कार के बाद यह संस्कार किया जाता है। इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य "पुंसवन" संस्कार की तरह गर्भ की रक्षा करना है। दोनो संस्कारों के समय में अन्तर है। "पुंसवन" संस्कार गर्भावस्था के तीसरे या चौथे मास के भीतर ही किया जाता है। "सीमन्तोन्नयन" संस्कार गर्भावस्था के "छठें" या "आठवें" मास में किया जाता है।

१- हस्ते श्रंङ्गणि विभ्रतः। प्रहासिनः। अथर्व० ८,६,१४

२- सायण ने पिंग को गौर वर्ण के सरसों से समीकृत किया है "सायण भाष्य" मंत्र ८,६,१८ इस सूक्त ८,६ की भूमिका में कौशिक ३५,२० को उद्धृत करते हुए सायण कहते है कि इस सीमन्तोन्नयन कर्म में श्वेत और पीत सर्षप को गर्भिणी के हाथ में बांध देना चाहिए, "यौ ते माता इति मन्त्रोक्तौ बध्नति" (कौ० सू० ३५, २०)

३- यस्ते गर्भ प्रतिमृशाज्जातं वा मारयति ते।
पिंगस्मुग्रधन्वा कृणातु हृदयाविधम्।। अथर्व० ८,६,१८

४- पिंग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन्।
आण्डादो गर्भान्मा दभन्बाधस्वेतः किमीदिनः।। वही ८,६,२६

४ – जातकर्म

वैदिक–संहिताओं में "जातकर्म" संस्कार का कहीं भी स्पष्ट उल्लेख नहीं हैं। ऋग्वेद संहिता में "जात" शब्द का प्रयोग अवश्य हुआ है, जिसमें इन्द्र की जन्मजात शक्तियों का वर्णन किया गया है।[1] जन–समुदाय के लिये इस मंत्र में दिया गया "जनास" सम्बोधन भी अवश्य विचारणीय है। "जन्मन्" शब्द का प्रयोग भी ऋग्वेद–संहिता में आया है। जिसका तात्पर्य जन्यमान–सन्तति से है।[2] चाहे जिस अर्थ में भी जन्मन् शब्द का प्रयोग हुआ हो इस बात से कदापि मना नहीं किया जा सकता कि ये ही शब्द आगे चलकर जातकर्म–संस्कार के सूत्र बन गये। ऋग्वेद–संहिता में शिशु की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रार्थना की गयी है कि – "प्रसवकाल में जननी का अंग अनुकूल हो जाता है। वायु जिस प्रकार सरोवर आदि के जल को चलाता है, वैसे ही स्त्री का गर्भस्थ शिशु गतिमान् होते हुए दश महीने की अवधि पूर्ण होने के पश्चात् ही बाहर आये। वायु, वन और समुद्र की तरह जरायु में लिपटा हुआ कम्पमान शिशु सुरक्षित बाहर आये।"[3]

१– यो जात एव प्रथमो मन स्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्मणस्य मह्वस जनास इन्द्रः।।(ऋ० २।१२।१)

२– स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैवीजं भरते धना नृभिः।
देवानां यः वितरमाविवासाति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम्।। ऋ० २।२६।३

३– ऋग्वेद संहिता (५।७८।५, ७,८,९)

अथर्ववेद में जातकर्म संस्कार का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। परन्तु एक सम्पूर्ण सूक्त[१] में सरल तथा सुरक्षित प्रसव के लिए प्रार्थना की गई है। इससे जात कर्म संस्कार के विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। एक मंत्र में कहा गया है, कि हे पूषन्, प्रसव के इस अवसर पर विद्वान और श्रेष्ठ होता तेरा यजन करें और नारी भली-भाँति शिशु को जन्म दे और प्रसूता के शरीर के सन्धि स्थान प्रसव करने के लिए विशेष रूप से ढीले हो जाएँ।"[२]

ऋग्वेद-संहिता से पता चलता है कि, सन्तति की उत्पत्ति हेतु देवों की स्तुति की जाती थी - दश मासों की अवधि पर्यन्त माता के गर्भ में रहता हुआ सुकुमार, सजीव माता के गर्भ से नीरोगावस्था में बाहर आये।"[३]

ब्रह्म-पुराण में पुत्र-जन्म के अवसर पर किये गये इस कार्य को नान्दी श्राद्ध कहा गया है।"[४] इस सूक्त के अन्य मंत्रो से ज्ञात होता है कि, इस समय कुछ अनुष्ठान किये जाते थे जिसमें देव प्रार्थनाएँ भी होती थी। "देवों ने ही गर्भ को भेजा था अब वे ही उसे प्रसव के लिये गर्भाशय से बाहर करें।"[५]

१- सूक्त (१,११)
कौशिक सूक्त ३३,१

२- वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः।
सिस्नतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ।। अथर्ववेद - १,११,१

३- दश मासान्छशयानः कुमारो अधि मातारि।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि।।(ऋ० ५-७८-६)

४- नान्दी श्राद्धावसाने तु जातकर्म समाचरेत्। - हिन्दू संस्कार - डॉ०राजवली पाण्डेय पृ० ६४

५- चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूम्या उत।
देवा गर्भ समैरयन् तं। व्यूर्णवन्तु सूतवे ।।अथर्ववेद १,११,२

अथर्ववेद में कहा गया है कि, हे सुख प्रसविनी स्त्री तू अपने अंगो को शिथिल कर दे हे विष्कले, तू गर्भ को नीचे की ओर प्रेरित कर।[१] ऐसी कुछ प्रार्थना अथर्ववेद के एक दूसरे मंत्र में भी की गयी है।[२] अथर्ववेद के ये कृत्य गृह्यसूत्रों के शोष्यन्ती-कर्म के समान हैं जिनमें शीघ्र प्रसव के लिये कृत्यों का वर्णन है। आचार्य सायण ने अपने भाष्य में मूल नक्षत्र की व्याख्या करते हुए कहा है कि - "मूलनक्षत्रं हि मूलोन्मूलकम्"। इसी प्रकार कहा गया है "जो वंश के मूल को ही नष्ट कर दे उसे मूल-नक्षत्र कहा गया है"।[३] जातकर्म-संस्कार द्वारा माता-पिता अपनी सन्तति को मेधावी, दीर्घायुष्य वाली एवं बलिष्ट बनाने की कामना करते थे। इस मनोकामना की सिद्धि हेतु सद्योजात सन्तान की जिह्वा मे यव और चावल का चूर्ण लगाता था तत्पश्चात् सुवर्ण द्वारा घिसे हुए मधु और घृत को लगाते हुए वैदिक मंत्र कहता था - यह अन्न ही प्रज्ञा, आयु, अमृत है ये तुम्हे प्राप्त हो जाय। परवर्ती गृह्यसूत्रों में से पराशर गृह्यसूत्र में "नवजात को दीर्घजीवी होने के आर्शीवाद दिये गये है।"[४]

१- श्रथया सूषणे त्वमव त्वं विष्कले सृज। अथर्व १,११,३
२- वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके।
वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणाव जरायु पद्यताम्।। वही १,११,५
३- मूलम् एषाम् अवृक्षामूर्ति तन्मूलबर्हणः-तैत्तिरीयब्राह्मण १,५,२,८।
४- पराशरगह्यसूत्र - १।१६।६

अशुभ समय में उत्पन्न बालक के उपचार की विधि का भी वर्णन मिलता है। इसमें अग्नि की प्रार्थना की गई है, कि 'हे अग्नि तुम चिरन्तन पुरुष होने के कारण पूज्य हो, तुम यज्ञों में प्राचीन होता हो, तुम अब नवीन होता बन कर बैठो। हे अग्नि! तुम आज्य आदि हव्य से अपने शरीर को पूर्ण बनाओ और हम लोगों को सौभाग्य प्रदान करो।"[१] इसके पश्चात् आशाओं की केन्द्र बिन्दु पुत्र की माता की स्तुति की जाती है। सुश्रुत के द्वारा "पति स्वयं कहता था तूम इडा हो, तुम मित्रावरुण की पुत्री हो, तुम वीरमाता हो क्योंकि तुमने वीर-पुत्र को जन्म दिया है। वीर पुत्र पैदा करने वाली वीरवती हो।"[२] गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म-संस्कारों का सम्बन्ध स्त्री से है, क्योंकि बिना स्त्री के ये सभी संस्कार सम्पन्न नहीं हो सकते शायद इसीलिए उपर्युक्त मंत्र में स्त्री का माता के रूप में महिमागान किया गया है।

१- प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्चहोता नव्यश्च सात्सि।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रायस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ।। अथर्व० ६,११०,१

२- इडाऽसि मैत्रावरुणी वीरे वीरणीजनयाः
सा त्वं वीरवती भव या स्मात् वीरवती करदिति। सुश्रुत

५- नामकरण

कौशिक[१] अथर्ववेद के एक सूक्त के कतिपय मंत्रों को नामकरण के लिये प्रयुक्त किया गया है। प्रथम मंत्र में हाथ में पवित्र जल लेकर संस्कार आरम्भ करने को कहा गया है।[२] वैदिक काल से ही लोक-व्यवहार के लिए नाम का होना आवश्यक माना जाता है। आचार्य बृहस्पति ने नामकरण के महत्त्व को बताते हुए कहा है कि संज्ञा सम्पूर्ण व्यवहार की हेतु है। यह शुभ कर्मों में भाग्य-विधान का कारण है। बिना नाम (संज्ञा) के कीर्ति की उपलब्धि असम्भव है, इसलिए नामकरण की उपयोगिता स्वतः प्रशस्त है।[३] ऋग्वेद गुह्य नाम को मान्यता प्रदान करता है।[४] मनु के अनुसार जन्म के दसवें या बारहवें दिन या उसकी परवर्ती किसी शुभ तिथि पर शुभ मुहूर्त में शिशु का नामकरण संस्कार किया जाता है।[५] नामकरण का एक और प्रकार है, जो शिशु के जन्म वाले महीने के देवता पर आधारित था।

१- अथ नामकरणम् आरभस्वेमामित्य विछिन्नामुदक धाराभालम्भयति। यस्ते वास इत्यहतेन्नो-
त्तरसिचा प्रछादयति। शिवे ते स्तामिति कुमारं प्रथमं निर्णयति इत्यादि-कौशिक सूक्त (५८,१३,१८)

२- आरभस्वेमामृतस्य .... सायणभाष्य। ८,२,१ ।

३- नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतु।
नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलु नाम कर्म।। (वीरमित्रोदय)

४- दूरे तन्नाम गुह्यं पराचैर्यन्त्वा भीते अह्णयेतां वयोधैः ।
उदस्तम्ना पृथिवीं द्यामभीके भ्रातुः पुत्रान्मधवन्तित्विषाणः।।(ऋ० १०।५५।२)

५- नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत्।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते।।(मनुस्मृति २.३२)

शतपथ ब्राह्मण में नवजात शिशु के नामकरण-संस्कार के विषय में एक विध्यात्मक नियम भी मिलता है : पुत्र के उत्पन्न होने पर उसका नाम रखना चाहिये।''[१] पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार नाम दो अथवा चार अक्षरों का होना चाहिये। वह व्यञ्जन से आरम्भ होना चाहिए। इसमें अर्धस्वर होना चाहिए तथा नाम का अन्त दीर्घ स्वर अथवा विसर्ग के साथ होना चाहिए।''[२] ऋग्वेद में दशम मण्डल के ७१ वें सूक्त में 'नाम' शब्द आया है।''[३] वीर मित्रोदय के अनुसार नामकरण में अक्षरों का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। पिता को एकाक्षर, द्वयक्षर अथवा अपरिमिताक्षर नाम रखना चाहिए।''[४] वशिष्ठ के अनुसार नाम की संख्या में दो या चार अक्षरों तक सीमित होना चाहिए और लकारान्त तथा रेफान्त नामों की मनाही कर देते हैं।''[५] आश्वलायन गृह्यसूत्र के अनुसार अक्षरों की विभिन्न संख्याओं के साथ विभिन्न प्रकार के गुणों का योग होता है। प्रतिष्ठा अथवा कीर्ति के लिए इच्छुक व्यक्ति को द्वयक्षर तथा ब्रह्मवर्चसकाम व्यक्ति को चतुरक्षर नाम रखना चाहिए।''[६] यजुर्वेद में पिता द्वारा नामकरण करते समय यह जिज्ञासा करने को कहा गया है- ''तुम कौन हो, अनेकों में से तुम कौन हो। तुम किसके हो, तेरा नाम क्या है, जिसे हम सब जान सकें।''[७]

१- तस्मात्पुत्रस्य जातस्य नाम कुर्यात। (शतपथ ब्राह्ममण ६,१,३,९)
२- पारस्कर गृह्यसूत्र - १,१७,१।
३- वृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधाना । (ऋग्वेद १०,७१,१)
४- पिता नाम करोति एकाक्षरं द्वयक्षरं त्र्यक्षरं अपरिमिताक्षरं वा। वीरमित्रोदया सं० भा० १ पृ० २४१ पर उद्धृत।
५- तद् द्वयक्षरं चतुरक्षरं वा विवर्जयेदन्त्यलकाररेफम्। वशिष्ठ धर्म सूत्र ४।
६- द्वयक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतुर ब्रह्मवर्चसकामः। आश्वलायन गृह्मसूत्र १,१५,५।
७- कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि।
यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपामु।
भूर्भुवः स्वः सुप्रजा प्रजाभि स्या सुवव सुपोष पोषैः (यजुर्वेद ७/२९)।

बालिका के नामकरण का आधार भिन्न ही था। "वीर मित्रोदय के अनुसार स्त्री का नाम त्र्यक्षर अथवा ईकारान्त होना चाहिए।"[1] उसका नाम नक्षत्र, वृक्ष, नदी, पर्वत, पक्षी, सर्प तथा सेवक के नाम पर और भीषण नहीं होना चाहिए। 'मनु के अनुसार स्त्रियों (बालिकाओं) का नाम उच्चारण में सुखकर और सरल सुनने में अक्रूर, विस्पष्टार्थ तथा मनोहर, मङ्गलसूचक, दीर्घवर्णान्त और आशीर्वाद-युक्त होना चाहिए।[3] बाण ने कादम्बरी में लिखा है कि तारापीड ने अपने पुत्र चन्द्रापीड का नामकरण पुण्य मुहूर्त में जन्म से दस दिन बाद कराया था।[4] द्विजों के नाम प्रायः देव बोधक हुआ करते थे।[5] मनु के अनुसार ब्राह्मण का नाम मङ्गलसूचक, क्षत्रिय का बलसूचक, वैश्य का धनसूचक तथा शूद्र का नाम जुगुप्सित अथवा कुत्सासूचक रखना चाहिए।[6] पिता अथवा कुलवृद्ध को शिशु का नाम नक्षत्र से सम्बद्ध रखना चाहिए।

१- त्र्यक्षरमौकारान्त स्त्रियाः । वीरमित्रोदय सं० भा०१,पृ० २४३
२- नर्क्षवृक्षनदीनाम्नी नान्त्यपर्वतनामिकाम।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम।। मनुस्मृति ३.६
३- स्त्रीणां च सुखमक्रूरं विस्पष्टार्थ मनोहरम्।
माङ्गल्यं दीर्धवर्णान्तमाशीर्वादमिधानवत्।। मनुस्मृति २.३३
४- प्राप्ते दशमेऽहनि पुण्ये मुहूर्ते चन्द्रापीड इति नाम चकार। (काम्दरी पूर्वभाग)
५- को नामासीत्युक्तो देवताश्रयम्। (खादिर गृह्यसूत्र २.४.१२)
६- मङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात् क्षत्रिस्य बलान्वितम् ।
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुत्सितम्।। मनुस्मृति २.३३
७- नक्षत्रनाम सम्बद्धं पिता वा कुर्यादन्यों कुलवृद्ध इति। वीरमित्रोदय सं० भा० १ पृष्ठ २३७

मनु के शब्दों में चारों वर्णों का नाम आनंद सूचक होना चाहिए। ब्रह्मणों के नाम के साथ "शर्मा" शब्द क्षत्रियों के नाम के साथ "रक्षा" का बोध कराने वाला शब्द, वैश्यों के नाम के साथ "पुष्टि" का बोध कराने वाला शब्द तथा शूद्रों के नाम के साथ दासता का बोध कराने वाला शब्द जोड़ना चाहिए।[1] विभिन्न वर्णों के साथ भिन्न-भिन्न उपनाम होना चाहिए। ब्राह्मण के नाम के साथ शर्मा, क्षत्रिय के नाम के साथ वर्मा, वैश्य के नाम के साथ गुप्त तथा शूद्र के नाम के साथ दास शब्द का प्रयोग किया जाता था।[2] बालक का नाम उस कुलदेवता के अनुसार रखा जाता था, जिसकी पूजा कुल में अत्यन्त प्राचीन काल से चली आती हो।[3]

इस बारे में लोगों की मान्यता थी कि शिशु को देवता का संरक्षण प्राप्त होगा। लोग नवजात शिशु का नाम इन्द्र, सोम, प्रजापति, मित्र, वरुण आदि वैदिक नाम या शंकर, राम, गणेश, विष्णु आदि देवताओं के नाम रखते थे।[4] वीर मित्रोदय के अनुसार शिशु का नामकरण जन्म के दशवें, बारहवें, तेरहवें, सोलहवें, उन्नीसवें अथवा बत्तीसवें दिन सम्पन्न करना चाहिए।[5]

१- शर्मवद् ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम्।
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम्।। मनुस्मृति २.३४

२- शर्मेति ब्राह्मणस्योक्तं वर्मेति क्षत्रिस्य तु।
गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः ।। व्यास स्मृति

३- कुलदेवतासम्बद्धं पिता नाम कुर्यादिति। शङ्ख स्मृति

४- कुलदेवता कुलपूज्या देवता तया सम्बद्धं पत्प्रतिपादकमित्यर्थः।
अस्मिंश्च व्याख्याने अनादिरवच्छिन्नः शिष्टाचारो मूलम्।। वीरमित्रोदय सं०भा० १, पृ० २३७

५- द्वादशाहे दशाहे वा जन्मतोऽपि त्रयोदशे।
षोडशैकोनविंशे वा द्वात्रिंशे वर्णतः क्रमात्।। वीरमित्रोदय सं० भा०१, पृ० २३४

निष्क्रमण

जन्म से एक निश्चित अवधि के बाद जब संतान को पहली बार घर के बाहर निकाला जाता था, तब वह "निष्क्रमण" कहा जाता था। परन्तु वैदिक साहित्य में निष्क्रमण की चर्चा स्पष्ट रूप से कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती है। अथर्ववेद में बालक को प्रसूति गृह से बाहर निकालते समय मंङ्गलकारी आशीर्वचनों का प्रयोग किया गया है। "स्वर्ग और पृथिवी तुम्हारे लिये कल्याणकारी हों, सूर्य अपने प्रकाश से, वायु अपने प्रवहन से एवं दिव्य जल अपने गुणों से तुमको पोषित करे।[१] पारस्कर गृह्य सूक्त में संस्कार सम्पन्न करने के बाद ही शिशु अपनी माता के साथ बाहर लाया जाता था। यह संस्कार प्रायः जन्म के बारहवें दिन से चौथे मास तक सम्पन्न हो जाता था।[२] मनु के अनुसार बालकों को जन्म के चौथे मास बाहर लाना चाहिए।[३] शिशु को माता के गोद में देकर उसे सूर्य का दर्शन कराया जाता था। पिता उसे लेकर सूर्य की और अभिमुख होता था। कभी-कभी तीसरे महीने सूर्य का दर्शन और चौथे महीने चन्द्र का दर्शन कराने की व्यवस्था थी।[४]

१- शिवा अभिक्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः । अथर्ववेद ८।१२।१४ ।

२- चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति। पारस्कर गृह्यसूक्त १,१७।

३- चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मङ्गलं कुले।। मनु. २.३४ ।

४- तृतीये मासे कर्त्तव्यं शिशोः सूर्यस्य दर्शनम्।
चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं तथा चन्द्रस्य दर्शनम् ।। कात्यायन गृह्य सूक्त ३७,३८ ।

अथर्ववेद में बालक को खुले मैदान में लाकर उसके लिए सम्पूर्ण प्राकृतिक शक्तियों से प्रार्थना की गयी है कि सूर्य, चन्द्र एवं वनस्पतियों इस नवागन्तुक को सुखी करें।[1] गृह्यसूत्रों के अनुसार इस संस्कार को सम्पन्न कराने का एकमात्र अधिकार माता-पिता को था, परन्तु पुराणों के अनुसार इस विशेष अधिकार का शिशु का मातुल माना गया है।[2] पारस्कर-गृह्यसूत्र में पिता द्वारा निष्क्रमण कराते समय शिशु के दक्षिण कान में मंत्र का जप करना चाहिए तथा उसका सिर सूंघना चाहिए।[3]

इस समय आठ लोकपालों, सूर्य, चन्द्र, वासुदेव और आकाश की भी स्तुति की जाती थी। ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था और शुभ सूचक श्लोकों का उच्चारण किया जाता था। शङ्खध्वनि तथा वैदिक मंत्रों के उच्चारण के साथ शिशु बाहर लाया जाता था। बाहर लाते समय पिता शकुन्त-सूक्त या अन्य प्रकार के मंत्रों का उच्चारण करता था। यह शिशु अप्रमत्त हो या प्रमत्त, दिन हो या रात, इन्द्र के नेतृत्व में (शक्र-पुरोगमाः) सब देव इसकी रक्षा करें।[4]

१- शिवास्ते सन्त्वोषधयः उत्त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमाभि।
तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्य्याचन्दमसावुभौ।। अथर्ववेद - ८।२।१५

२- उपनिष्क्रमणे शास्ता मातुलो वाहयेच्छिशुम्। मुहूर्तसंग्री, वीरमित्रोदय स० भा० १ पृष्ठ २५३

३- आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्। (पारस्कर गृह्यसूक्त १/१४)

४- अप्रमत्तं प्रमत्तं वा दिवा रात्रवथापि वा।
रक्षन्तु सततं सर्वे देवाः शुक्रपुरोगमाः।। विष्णुधर्मोतर ।

निष्क्रमण संस्कार के समय निर्धारण के सम्बन्ध में विद्वान मतैक्य नहीं हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार बालक को कौपीन (नीवि) के समान कोई वस्त्र पहनाने का सन्दर्भ है। "हे बालक, जो तुम्हारा ऊपरी परिधान है और जो नाभि के समीप पहनने वाला वस्त्र (नीवि) है वे दोनों वस्त्र तुम्हारे लिये सुखकर हों। उन वस्त्रों को स्पर्श के योग्य बनाता हूं।" कौशिक सूक्त में "कुमारं प्रथमं निर्णयति" को इस निर्णय के लिए प्रयुक्त करते हैं। इस संस्कार के मूल में यह विचार था कि एक समय-परिधि और निश्चित तिथि पर शिशु को सर्वप्रथम उन्मुक्त वातावरण और प्राकृतिक जीवन में लाकर तथा सूर्य और चन्द्र जैसे नक्षत्रों के प्रकाश में लाकर उसके स्वच्छन्द विकास पर बल दिया जाय।

१- यत्ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषेत्वम्।
शिवं ते तन्वे तत्कृण्मः संस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ते। अथर्ववेद- ८,२,१६

७- अन्नप्राशन

पांचवे महीने के बाद शिशु अन्न खाने लायक हो जाता है और शनैः-शनैः वह अन्न की ओर आकृष्ट होने लगता है। इस संस्कार के पूर्व तक शिशु मां के दूध और गाय के दूध पर निर्भर करता है। शिशु के प्रथम बार दांत निकलने पर अन्न खिलाने को "प्राशित्र" कहा जाता था।"[१] छठे मास में शिशु को अन्नप्राशन कराया जाता था। इस संस्कार में दूध,मधु,घी,दही और पका हुआ चावल बच्चे के मुख से स्पर्श कराया जाता था। कभी-कभी बच्चे को मांस का भी आहार कराया जाता था। शिशु की वाणी में प्रवाह लाने के लिये भारद्वाज पक्षी के मांस और उसकी कोमलता के लिए मछली खिलाने का भी विधान किया गया था। हिन्दू परिवारों में मांस-भक्षण का चलन बहुत कम था। यह संस्कार वर्ष के अन्त में भी सम्पन्न कराया जाता था।[२] अथर्ववेद संहिता काल में संस्कार के संकेत पाये जाते है। इसमें बालक के प्रथम दन्त-दर्शन के समय का वर्णन पाया जाता है।"[३]

१- बालस्य यत्प्रथम भोजनं तदुच्यते प्रशित्रम् - शब्दानुशासन ६,४,२५
२- संवत्सरेऽन्नप्राशनमर्धसवत्सर इत्येके। शङ्खस्मृति, पृष्ठ २८
३- ६,१४० अथर्ववेद ।

कौशिक सूत्र बालक के प्रथम दन्त दर्शन-कृत्य के लिये एक विशेष सामग्री की बात करता है, जो सम्भवतः अन्न प्राशन से सम्बद्ध है। पिता मन्त्रों को पढ़कर दांत से अन्न कटवाता है। शीतल उदक में बने अन्न को बच्चा और उसके माता-पिता खाते हैं।[1] अथर्ववेद संहिता में व्याघ्र के दांतों के समान निकले हुए बालक के दांतों को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि "हे दोनों दांतों! चावल खाओ, यव खाओ, माष और तिल खाओ। यह अन्न भाग तुम्हारे कोश का वर्धन करे। माता-पिता को तुम्हारे कारण हानि न हो।[2] दूसरी जगह इसी प्रकार प्रार्थना के मंत्र मिलते हैं कि व्याघ्र के समान बलिष्ठ निकले हुए दोनों दांत माता-पिता के लिए हानिकारक हैं। हे ब्रह्मणस्पति, हे जातदेवस उन्हें शुभकारी बनाओ।[3] ये दोनों दांत सम्पूजित हैं, सुखकारी और मङ्गलदायक हैं, जो तुम्हारे भयंकर परिणाम हैं वे अन्यत्र जायें और हे दांत तुम माता-पिता की हिंसा न करो। इस उद्धरण में अन्नप्राशन और अशुभ दांतों से सम्बन्धित संस्कारों का वर्णन मिलता है।[4]

१- यस्योत्तमदन्तौ पूर्वो जायेते यौ व्याघ्रावित्यावपति।
मन्त्रोक्तान्दर्शयति। शान्त्युदकशृतमादिष्टानामाशयति। पितरौ च। कौशिक सूक्त, ४६-४३-४६

२- ब्रीहि मंत यवमत्तमथो मासमथोतिलम्।
एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय दन्तौ मा हिंसिष्ट पितरं मातरं च। (अथर्ववेद ६/१४०/२)

३- यौ व्याघ्रावबरूढौजिघत्सतः पितरं मातरं च।
यौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कुणु जातवेदः।। ६,१४०,१

४- उपहूतो सयुजौ स्योनौ दन्तौ सुमङ्गलौ।
अन्यत्र वां घोरं तन्वः परैतु दन्तौ मा हिसिष्टं पितरं मातरं च ।। ६,१४०,३

अथर्ववेद में वर्णित है कि नवीन वस्त्र पहनने के अनन्तर कहा जाता था कि ये नवीन वस्त्र शिशु की रक्षा करें। हम लोग तुम्हें पहली बार वस्त्र पहनाते हैं और पाषाण पर खड़ा करते हैं। देवता तुम्हारी रक्षा करें और तुम्हारे अनेक सहोदर उत्पन्न हों।''[१] महर्षि लौगाक्षि का यह मानना है कि शिशु का यह संस्कार तब होना चाहिए जब उसकी पाचनशक्ति सही हो जाय और उसके दांत निकल आयें।[२] अथर्ववेद में एक स्थान पर स्पष्ट कहा गया है कि हे बालक, जो कुछ तुम खाते पीते हो, उस सब पदार्थ-समूह को तेरे लिए खाने योग्य किया गया है।''[३] एक मंत्र में शिशु की रक्षा के लिए अग्नि से प्रार्थना की गई है। 'हे अग्नि इस बालक की आयु वृद्धावस्था तक बढ़ाओ, तुम घृत, मधु और गव्य का पान कर इस बालक की पितृवत् रक्षा करो।''[४] हम तुम्हें पहली बार वस्त्र पहनाते हैं। देवगण तुम्हें सुरक्षित रखें और तुम्हारे अनेक सहोदर भ्राता उत्पन्न हों।''[५]

१- एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनुः।
कृण्वन्तु विश्वेदेवा आयुष्टे शरदः शतम्।। (अथर्व० संहिता १,१३,४)

२- षष्ठे अन्नप्राशनं जातेषु दन्तेषु वा। (महर्षि - लौगाक्षि)

३- यदश्नासि यत्पिबसि धान्यं कृष्याः पयः।
यदाद्यं यदनाद्यं सर्व ते अन्नमविषं कृणोमि।। अथर्ववेद- ८,२,११

४- आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो घृतप्रतीको अग्ने।
घृतं पीत्वा मधु चारु गण्यं पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम्। अथर्ववेद- २,१३,१

५- यस्य ते वासः प्रथमवास्यं हरामस्तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवा।
तं त्वा भ्रातरः सुवृधा वर्धमामनु जायन्तां बहवः सुजातम्।। अथर्ववेद- २,१३,४

अन्नप्राशन बालक और बालिका दोनों का होता था। परन्तु इसमें कुछ भेद अवश्य दिखायी पड़ता है। बालकों के लिए सममास एवं बालिकाओं के लिए विषममास श्रेष्ठ माना गया है। नारद स्मृति में "अन्न प्राशन संस्कार के सम्बन्ध में जन्म से छठे, आठवें, नवें, दसवें, बारहवें, मास को भी समय की अवधि माना गया है। किसी कारणवश यदि यह संस्कार एक वर्ष के अन्दर भी सम्पन्न न किया गया हो, तो एक वर्ष के पूरे होने पर भी किया जा सकता है।"

अन्न स्वास्थ्य, बल और आयु के लिए कितना महत्वपूर्ण है यह संस्कार इसी भावना से सम्पन्न कराया जाता था।

१- जन्मतो मासि षष्ठे वा सौरेणोत्तममन्नदम्।
तदभवेऽष्टमे मासे नवमे दशमेऽपि वा।
द्वादशे वाऽपि कुर्वीत प्रथमान्नाशनीम परम्।
संवत्सरे वा सम्पूर्णे केचिदिच्छन्ति पण्डिताः।। नारदस्मृति ।

८- चूडाकर्म

शिशु के पहली बार बाल काटने के आयोजन को "चूडाकरण" या चूडाकर्म संस्कार कहा जाता था।[१] एक सूक्त को कौशिक ने गोदान, चूडाकरण और उपनयन तीनों के लिए विनियुक्त किया है अतः यह कहना कठिन है कि इस सूक्त में संस्कार विशेष की चर्चा है।[२] एक मंत्र में सविता से क्षर लाने की प्रार्थना की गयी है और वायु से उष्ण जल लाने की प्रार्थना की गयी है।"[३] सम्भवतः नाई से बाल कटवाने के पूर्व संस्कार के अनुसार ब्राह्मण पुरोहित कुछ बालों को काटता था। मन्त्र में कथन है कि जिसे क्षुर से सवितृदेव ने राजा सोम और वरुण की क्षौर-क्रिया सम्पन्न की थी, हे ब्राह्मण (पुरोहित) इसका क्षौर करो। उसे क्षुर से यह शिशु गायों, ऐश्वर्य और अश्वों से युक्त हो।[४]

१- स च चूडाकरणशब्दः कर्मनामधेयम यौगिकन्यायेनोदिभदादिशब्दवत्। महाभाष्य, २, पृष्ठ २६२
योगश्च, चूडार्थ करणं चूडा क्रियते यस्मिकर्मणीति वा त्रिधैव संभवति। संस्कार प्रकाश पृष्ठ २९५

२- गौदान के लिए ५३, १७-२० में । उपनयन के लिए ५५,२ में । चूडाकरण के लिए ५४,१५-१६ में। कौशिक सूक्त ।

३- अयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेने वाय उदकेनेहि । अथर्ववेद ६,६८,१

४- येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान। ५४-१५-१६
तेन ब्राह्मणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान्। ६,६८,३ कौशिक सूक्त ।

मनु के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अर्थात् द्विजाति के बालकों का जन्म के पहले या तीसरे वर्ष में अपनी सुविधा अनुसार वैदिक विधि से मुण्डन संस्कार होना चाहिए।[१] शतपथ ब्राह्मण में लम्बे बाल रखने वाले पुरुष की निन्दा करते हुए उसे "स्त्रैण" अर्थात स्त्री के अधीन रहने वाला कहा गया है।[२] शायद व्यक्ति के सौन्दर्य, दीर्घआयु और कल्याण की प्राप्ति इस संस्कार का प्रयोजन था।

"चूडाकरण से दीर्घायु प्राप्त होती है तथा इसके सम्पन्न न करने पर आयु का ह्रास होता है। अतः प्रत्येक दशा में यह संस्कार करना चाहिए।"[३] मुण्डन के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले छुरे से प्रार्थना की जाती है कि उसके हानिकारक तत्व दूर चले जायें। नाम से तू शिव है। लोहा (स्वधिति) तेरा पिता है। मैं तुझे नमस्कार करता हूं। तू शिव की हिंसा अथवा क्षति न करे।"[४]

१- चूड़ाकर्म द्विजातीनं सर्वेषामेव धर्मतः।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात्।। मनुस्मृति २,३७ ।

२- शतपथ ब्राह्मण ५,१,२,१४।

३- तेन ते आयुषे वपामि सुश्लोकाय स्वस्तये । आपस्तम्ब गृह्यसूक्त १७,१२।

४- ओम् शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा माहिसीः। यजुर्वेद ३,६३।

चरक का मत है कि केश, श्मश्रु तथा नखों के काटने तथा प्रसाधन से पौष्टिकता बल, आयुष्य, शुचिता और सौन्दर्य की प्राप्ति होती है।"[१] आयु, अन्नाद्य, प्रजनन, ऐश्वर्य (रायस्पोष) सुसन्तति (सुप्रजास्तव) बल-वीर्य की प्राप्ति के लिए स्वयं पिता द्वारा केशच्छेदन का उल्लेख भी प्राप्त होता है।"[२] कतिपय आचार्यों का मत है कि ये कर्म यह उपनयन संस्कार के साथ सम्पन्न किया जाता था। जो सात वर्ष की आयु के बाद भी सम्पन्न किया जा सकता था। तृतीय अथवा पंचम वर्ष में चौलकर्म प्रशस्त माना जाता है। किन्तु यह सप्तम वर्ष में अथवा उपनयन के साथ भी किया जा सकता है।"[३] अत्रि के अनुसार 'प्रथम वर्ष में चौल संस्कार करने से दीर्घायुष्य तथा ब्रह्मवर्चस् प्राप्त होता है। तृतीय वर्ष में करने से वह समस्त कामनाओं की पूर्ति करता है। पशुकाम व्यक्ति को पंचम वर्ष में यह संस्कार करना चाहिए किन्तु युग्म अथवा सम वर्षों से इसको सम्पन्न करना गर्हित है।"[४]

१- पापोपशमनं केशनखरोमापमार्जनम्।
हर्षलाघवसौभाग्यकरमुत्साहवर्धनम्।। चरक संहिता २४.७२

२- ओमू निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय। यजुर्वेद ३.३३

३- तृतीये पञ्चमे वाऽब्दे चौलकर्म प्रशस्यते।
प्राग्वाऽसमे सप्तमे वा सहोपनयनेन वा ।। आश्वलायन वीरमित्रो सं०भा० १ पृष्ठ २६६ पर

४- तृतीय वर्षे चौलं तु सर्वकामार्थसाधनम्।
संवत्सरे तु चौलेन आयुष्यं ब्रह्मवर्चसम्।।
पञ्चमे पशुकामस्य युग्मे वर्षे तु गर्हितम्।। अत्रि पृष्ठ २६८

तृतीय वर्ष में सम्पन्न चूडाकरण को विद्वान सर्वोत्तम मानते हैं। षष्ठ अथवा सप्तम वर्ष में यह साधारण है, किन्तु दसवें अथवा ग्यारहवें वर्ष में यह निष्कृटतम माना जाता है।[१] यह दिन में भी किया जाता था इसका प्रत्यक्ष कारण यह था कि रात्रि में केशच्छेदन भय से रहित नहीं था। शिशु की माता के गर्भिणी होने पर उसका क्षौर-कर्म निषिद्ध था।[२] शिखा रखना चूडाकरण संस्कार का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अङ्ग था, जैसा कि स्वयं संस्कार के नाम से सूचित होता है। शिखा कुल के प्रथा के अनुसार रखी जाती थी- 'केशों की व्यवस्था (केशवेशान)' अपने कुल-धर्म के अनुसार करना चाहिए।"[३] यज्ञोपवीत तथा शिखा अवश्य धारण करनी चाहिए। उनके बिना धार्मिक संस्कारों का अनुष्ठान न करने के समान है।"[४] गृह्य सूत्रों के अनुसार चूडाकरण संस्कार जन्म के पश्चात् प्रथम वर्ष के अन्त में अथवा तृतीय वर्ष की समाप्ति के पूर्व सम्पन्न होता था।"[५]

१- नारद स्मृति वीरमित्रोदय सं० भा० १ पृष्ठ २९६
२- गर्भिण्यां मातरि शिशोः क्षौरकर्म न कारयेत्। बृहस्पति स्मृति पृष्ठ ३१२
३- यथाकुलधर्म केशवेशान् कारयेत्। आपस्तम्ब गृह्यसूक्त १.१७
४- विशिखो व्युपवीतश्च यत् करोति न तत् कृतम। देवल, वीरमित्रोदय सं० भा. १ , पृष्ठ ३१५
५- पारस्कर गृह्यसूक्त - २.१.१-२

शिखा का छेदन करने वाले व्यक्तियों के लिए प्रायश्चित का विधान किया गया है। जो द्विजाति मोह, द्वेष अथवा अज्ञान के वशीभूत होकर शिखा का छेदन करते हैं, वे तप्तकृच्छ व्रत के द्वारा शुद्ध होते हैं"[1] चूडाकरण संस्कार के लिए एक शुभ दिन निश्चित किया जाता था। आरम्भ में संकल्प, गणेश की पूजा, मंगल-श्राद्ध आदि प्रारम्भिक कृत्य सम्पन्न किये जाते थे। किसी लोहे की वस्तु द्वारा केश्च्छेदन नवीन तथा भयपूर्ण कृत्य था। लोगों को यह ज्ञात था कि इससे शिर स्वच्छ हो जायेगा, किन्तु साथ ही वे इस आङ्कका से भयभीत रहते थे कि कहीं यह उस व्यक्ति को जिसके केशों का छेदन किया जा रहा है किसी प्रकार की क्षति न पहुंचाये। शायद यही कारण था कि, जल में उष्ण जल, शीतल जल और दही का कुछ भाग मिलाया जाता था। तत्पश्चात् केशच्छेद सम्पन्न किया जाता था।

१- शिखां छिन्दान्ति ये मोहाद् द्वेषादज्ञानतोऽपि वा ।
तप्तकृच्छ्रेण शुध्यन्ति त्रयो पर्णा द्विजातयः।। लघु हारीत

६- कर्णवेध

कर्णवेध संस्कार शिशु के शोभन और अलंकरण के निमित्त किया जाने वाला धार्मिक संस्कार था, जो सन्तान के जन्म के सातवें महीने आयोजित किया जाता था। यदा-कदा यह संस्कार तीसरे या पाँचवे वर्ष भी सम्पन्न कराया जाता था। व्यास स्मृति के अनुसार मुण्डन के पश्चात् कर्णवेध संस्कार करना चाहिए।''[१] वैदिक संहिता में यह संस्कार अनुपलब्ध ही है। अथर्ववेद के एक सूक्त के मंत्र में कहा गया है कि चिकित्सक या माता-पिता में से कोई एक लोहे से अथवा किसी अन्य धातु से बने यन्त्र से शिशु के दोनों कानों का छेदन करे। इस कार्य से सन्तति को स्वास्थ्य सम्बंधी अनेक लाभ होते हैं।''[२] कात्यायन गृह्यसूत्र के अनुसार कर्णवेध तीसरे या पाँचवे वर्ष में होता है। कर्णवेध संस्कार में कान और स्त्रियों की नाक भी वेधी जाती है।''[३] बृहस्पति के अनुसार छठे या आठवें मास में कर्णवेध करें। कर्णवेध का समय प्रातः काल सर्वोत्तम है। तीसरे प्रहर न करें। कान में दर्जी से सुई में दोहरा धागा लेकर छेद करवावें। सुई, सोना, चाँदी, ताँबे या लोहे

१- कृते चूडे च बाले च, कर्णवेधो विधीयते। व्यासस्मृति- १। १८

२- लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि।
अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु।। अथर्ववेद ६।१४१।२

३- कर्णवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमे वा।। कात्यायन गृह्यसूत्र - १। २

की हो। अपनी सामर्थ्य के अनुसार राजा सोने की सुई से, ब्राह्मण और वैश्य चाँदी की सुई से और शूद्र लोहे की सुई से कान छिदवावें।"[१] गर्ग के अनुसार षष्ठ, सप्तमा, अष्टम् अथवा, द्वादश मास इस संस्कार के लिए उपयुक्त समय है। श्रीपति का मत है कि शिशु के दाँत निकलने से पूर्व और जबकि शिशु माता की गोद में ही खेलता हो कर्णवेध संस्कार सम्पन्न करना चाहिए।"[२] आचार्य सुश्रुत ने अपनी रचना के शरीर स्थान में लिखा है कि, रोगों की रोकथाम के लिए एवं बालक बालिका को अलंकृत करने की दृष्टि से यह संस्कार आवश्यक माना जाता था।"[३] कर्णवेध की प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए दूसरी तरफ सुश्रुत ने कहा है कि आन्त्रवृद्धि तथा अण्डकोश वृद्धि को नियन्त्रित करने के उद्देश्य से भी कर्णवेध संस्कार करना चाहिए।"[४] इसके पीछे-पावन धारणा यह थी कि बालक या बालिका को रोगों के दुष्परिणाम से बचाना।

१- बृहस्पति संहिता -१/१०४/६५,८७/६६/१०१

२- शिशोर जातदन्तस्य मातुरुत्संगसर्पिणः।
सौचिको वेधयेत्कर्णौ सूच्या द्विगुणसूत्र या।। वीरमित्रोदय सं०भा० १, पृ०२६१ पर उद्धृत।

३- रक्षाभूषणनिमित्तं बालस्य कर्णौ विध्येत। सुश्रुत-शारीर स्थान - १६-१

४- शङ्खोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा यत्नेन सेवनीम्।
व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येदन्त्रवृद्धिनिवृत्तये।। सुश्रुत शारीरस्थान - १६। २१

१०- समावर्तन

शिक्षा-समाप्ति के बाद जब ब्रह्मचारी अपने गृह की ओर प्रस्थान करता था, तब यह संस्कार सम्पादित किया जाता था। वीर मित्रोदय में कहा गया है कि "समावर्तन" का अर्थ "प्रत्यावर्तन" भी है।"[१] ब्रह्मचारी गुरु से आज्ञा लेकर विधि अनुसार स्नान कर अपने घर वापस आ जाए। इसके बाद वह शुभ लक्षणों वाली अपने समान वर्ण वाली सुन्दर कन्या से विवाह करे।"[२] पहले समावर्तन संस्कार आज के उपाधि प्राप्ति के समान था। जो व्यक्ति अपनी शिक्षा समाप्त कर लेते थे, उन्हीं का समावर्तन संस्कार किया जाता था। परन्तु समय परिवर्तन के कारण इस नियम में शिथिलता आ गई। गृह्यसूत्रों के अनुसार इनके (समावर्तन) के तीन प्रकार थे।"[३] स्नान के पूर्व विद्यार्थी को एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कर्तव्य का पालन करना होता था। वह गुरु से विद्यार्थी-जीवन की समाप्ति के लिए अनुमति की प्रार्थना तथा दक्षिणा द्वारा उसे संतुष्ट करता था।"[४] जिस गुरु ने शिष्य को एक भी अक्षर पढ़ाया हो, पृथिवी पर ऐसा कोई भी पदार्थ नही है जिसे गुरु को देकर उसके ऋण से मुक्ति प्राप्त की जा सके।"[५] मनुस्मृति के अनुसार अगर शिष्य आजीवन गुरुकुल में ही रहना चाहता हो, तो उसे मृत्यु तक सावधानीपूर्वक गुरु की सेवा करनी चाहिए।"[६]

१- तत्र समावर्तनं नाम वेदाध्ययनानन्तरं गुरुकुलात् स्वगृहागमनम्। वीरमित्रोदय सं०भा०पृष्ठ- ५६४

२- गुरुणाऽनुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधिः।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णा लक्षणान्विताम्।। मनुस्मृति-३.४

३- त्रयः स्नातका भवन्ति विद्यास्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातक इति। पारस्कर गृह्यसूत्र - २.५.३३

४- विद्यान्ते गुरुमर्थेन निमन्त्र्य कृतानुज्ञानस्य वा स्नानमिति। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र - ३.८

५- एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तद् द्रव्यं यद् दत्त्वा त्वनृणी भवेत्। लघुहारित।

६- यदि त्वात्यान्तिकं वासः रोचयेत् गुरोः कुले।
युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणात्। मनुस्मृति- २,२४७

नारी के विषय में संस्कार प्रकाश में वर्णन मिलता है कि इनके दो भेद थे "ब्रह्मवादिनी" एवं "सद्योवाहा"।"[१] पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार ब्रह्मचारी को अपने को एक कमरे में बन्द करना पड़ता था। ऐसा इसलिए किया जाता था, जिससे सूर्य स्नातक के उच्चतर तेज से अपमानित न हो, क्योंकि वह स्नातक के तेज से प्रकाशित होता है।"[२] अथर्ववेद के अनुसार इसका दूसरा नाम स्नान संस्कार भी है, जिसमें ब्रह्मचारी को प्रकाशित तपोमूर्ति रूपी सागर के तट पर खड़ा हुआ बतलाया गया है। स्नान किये हुए भूरे रंग एवं लाल रंग के ब्रह्मचारी को अत्यन्त उत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ बताया गया है।"[३] पारस्कर के अनुसार जिस प्रकार एक यज्ञ के अन्त में यज्ञ करने वाला यज्ञीय स्नान अथवा अवभृथ करता था, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य-रूपी दीर्घसत्र के अन्त में ब्रह्मचारी का स्नान करना आवश्यक था।"[४] कूर्म पुराण के अनुसार समावर्तन का समय २४ वाँ या २५ वाँ वर्ष होता था। इस समय तक ब्रह्मचारी एकाग्रचित्त होकर विद्या ग्रहण करता था।"[५]

१- द्विविधाः स्त्रियां ब्रह्मवादिन्यः सद्योवहश्च।
तत्र ब्रह्मवादिनी नामान्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्षचर्येति। मित्रोदय्-संस्कार प्रकाश।

२- एतदहः स्नातानां ह वा एष एतत्तेजसा तपति तस्मादेनमेतदहर्नाभितपेत्। पारस्कर गुह्यसूत्र-२.१.८१

३- तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सालिलस्य पृष्ठे तपोत्ततिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे।
स स्नातो बभ्रुपिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ।। अथर्ववेद- ११।५।१२६

४- दीर्घसत्रं वा एष उपैति यो ब्रह्मचर्यमुपैति। पारस्कर गह्मसूत्र २.२-१५

५- वेदान् वेदांस्तथा वेदौ वेदं वाऽपि समाहितः।
अधीत्य चाधिगम्यार्थ ततः स्नायाद् द्विजोत्तमः । कूर्मपुराण

ऋग्वेद के अध्ययन से पता चलता है कि समावर्तन के समय गुरु द्वारा शिक्षित स्नातक को समाज में आदर की दृष्टि से देखा जाता था। जिससे पता चलता है कि यज्ञोपवीतधारी सभी प्रकार की विद्याओं में निपुण थे। सुन्दर वस्त्र धारी युवक को गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने के बाद लोग सम्मानपूर्वक देखते थे।''[१] पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार गुरु विद्यार्थी को उच्च सम्मान का सूचक मधुपर्क प्रदान करता था जो राजा, आचार्य, जमाता, ऋत्विज् तथा प्रियजनों के लिए विहित था।''[२] याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार समस्त वेदों का अध्ययन करके अथवा अपनी वंश परम्परा के अनुसार दो या एक वेद का ही सम्यक् अध्ययन करने के पश्चात् ही अस्खलित ब्रह्मचारी स्नातक सुलक्षण स्त्री से पणिग्रहण करे।''[३] स्नातक को एक महद्भूत अथवा शक्तिशाली व्यक्ति समझा जाता था।''[४]

१- युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान् भवति जायमानः।
तं धीरासः कवयः उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः।। ऋग्वेद-३-८-४

२- षडर्ध्याभवन्ति, आचार्य ऋत्विग्वैवाह्यौ राजा प्रियः स्नातक इति। पारस्कर गुह्यसूत्र - १.३.१-२

३- वेद-व्रतानि वा परं नीत्वा ह्युभयमेव वा।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत।। याज्ञवल्क्य स्मृति।

४- महद्वै एतद् भूतं यत् स्नातकः। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र- ३.६.८

११- उपनयन

उपनयन का अभिप्राय स्वाध्याय अथवा वेदाध्ययन उपनयन संस्कार सम्पन्न बालक आचार्य के समीप अध्ययनार्थ जाता था। अथर्ववेद में आचार्य उपनयन करता हुआ ब्रह्मचारी को गर्भ में धारण करता है। वह तीन रात्रि पर्यन्त उसे उदर में रखता है। जब वह जन्म (नवीन या द्वितीय जन्म) ग्रहण करता है, तो देवगण उसे देखने के लिए एकत्र हो जाते हैं।"[१] गौतम एवं मनु के अनुसार ब्राह्मण बालक का गर्भ से आठवें वर्ष में, क्षत्रिय बालक का गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में और वैश्य बालक का गर्भ से बारहवें वर्ष में उपवीत संस्कार करना चाहिए।"[२] संस्कार प्रकाश के अनुसार उपनयन के दो अर्थ होते हैं- १. बच्चे को आचार्य के निकट ले जाना २. वह संस्कार या कृत्य जिसके द्वारा बालक आचार्य के पास ले जाया जाता है।"[३]

१- आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवा।। अथर्ववेद - ११.५.३

२- उपनयनं ब्राह्मणास्याष्टमे। एकादशद्वादशयोः क्षत्रियवैश्ययोः। गौतम धर्मसूत्र-१.६.१२
गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्
गर्भदिकादशे राज्ञो गर्भान्तु द्वादशे विशः ।। मनु स्मृति- २.३६

३- उप समीपे आचार्यादीनां वटोर्नयनं प्रावणमुपनयनम् ।। संस्कार प्रकाश- पृ०३३४

ब्राह्मण बालक का उपनयन संस्कार अपेक्षाकृत पहले कम आयु में होने का प्रधान कारण यह था कि बहुधा ब्राह्मणों का परिवार शिक्षित होता था। उनके पिता ही प्रायः आचार्य होते थे। इसलिए उनके बालकों का उपनयन शीघ्र हो जाता था। विभिन्न वर्णों के बालकों के उपनयन की आयु के लिए पारस्कर ने भी मनु जैसा ही विचार व्यक्त किया है।"[१] तैत्तिरीय संहिता में तीन ऋणों के वर्णन में ब्रह्मचारी और ब्रह्मचर्य शब्द आया है। ब्राह्मण जन्म से ही तीन वर्णों के व्यक्तियों का ऋणी होता है। ब्रह्मचर्य से ऋषियों के प्रति अनृण होता है, यज्ञ से देवताओं के प्रति और सन्तति से पितरों के प्रति। जिसके पुत्र होता है, जो यज्ञ करता है और जो ब्रह्मचारी के रूप में गुरु के पास जाता है, वह तीन ऋणों से अनृण हो जाता है।"[२] ब्रह्मचारी आचार्य के कुल में ही रहते और भोजन करते थे।"[३] इसके बदले में गुरु की सेवा करते थे, जैसे आश्रम की साफ-सफाई, गायों को चराना, भिक्षाटन करना, यज्ञ की अग्नि को प्रदीप्त करना आदि। छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित है कि वैदिककाल में आचार्य का महत्त्व मान्य हो गया था। आचार्य ही अन्तिम गति था।"[४]

१- अष्टमवर्षे ब्राह्मणमुपनयेद्गर्भाष्टमे वैकादशवर्षे राजन्यं द्वादशवर्षे वैश्यं यथा मंगलं वा सर्वेषाम्। पारस्कर गृह्यसूत्र -२.२

२- जायमानो ह वै ब्राह्मस्त्रिभिर्ऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य एष वा अनृणो यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारिवासी। तैत्तिरीय संहिता - ६.३.१०.५

३- आचार्यकुलवासिन् अथवा अन्तेवासिन्। छान्दोग्य उपनिषद् - ३.२.५,४.४.१०.१

४- आचार्यस्तु ते गतिर्वक्ता। छान्दोग्य उपनिषद्

आचार्य द्वारा निश्चित शर्तों की पूर्ति करने पर ही ब्रह्मचारी प्रविष्ट किये जाते थे। तैत्तिरीयोपनिषद् के अनुसार यह गुह्यविद्या सन्देह-शील व अशिष्ट विद्यार्थी को नहीं देनी चाहिए, अनन्य भक्त और सर्वगुण सम्पन्न छात्र ही इसका अधिकारी है।"[१]

आयु-

उपनयन संस्कार के विषय में विचारणीय तथ्य यह था कि बालक का उपनयन संस्कार कब किया जाए? इसके लिए हर वर्ग के लिए अलग-अलग आयु निर्धारित की गयी है। मनु स्मृति में कहा गया है कि ब्रह्म तेज पाने की इच्छा रखने वाले ब्राह्मण के बालक का गर्भ से पाँचवें में, विशेष बल पाने की कामना वाले क्षत्रिय का छठें वर्ष में और अधिक धन-खेती आदि की इच्छा वाले वैश्य बालक का आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत करना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि ऐसे लोगों के बालकों का विद्या अध्ययन अन्यों से पहले करवा देना चाहिए।"[२] बौधायन के अनुसार आठ और सोलह के बीच किसी भी वर्ष में ब्राह्मण का उपनयन किया जा सकता है।"[३] लघु आश्वलायन स्मृति के अनुसार ब्राह्मण का उपनयन सातवें या आठवें वर्ष में करना चाहिए।"[४]

१- एतद् गुह्यतमं नापुत्राय नाशिष्याय कीर्तयेदनन्यभक्ताय सर्वगुणसम्पन्नाय दद्यात्। तैत्तिरीय उपनिषद्।

२- ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यो विप्रस्य पञ्चमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे।। मनुस्मृति - २.३६

३- बौधायन गृह्यसूत्र -२.५

४- लघु आश्वलायन - १०.१

याज्ञवल्क्य और ब्रह्मोक्त याज्ञवल्क्य के अनुसार गर्भकाल से या जन्म से आठवें वर्ष ब्राह्मण का, क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष, वैश्य का बारहवें वर्ष या कुल की रीति के अनुसार उपनयन संस्कार करना चाहिए।"[१] उपनयन संस्कार की अन्तिम सीमा ब्राह्मण के लिए सोलह, क्षत्रिय के लिए बाईस और वैश्य के लिए चौबीस वर्ष की आयु थी।"[२]

क्षौर कर्म-

उपनयन संस्कार में उष्ण जल से सिर को भिगो कर शिष्य के बाल काट दिये जाते थे।"[३]

वस्त्र-

अथर्ववेद में उपनीत बालक के वस्त्र के विषय में कहा गया है कि परीदं वासो अधिथाः स्वस्तये।"[४] मनु के अनुसार ब्राह्मण ब्रह्मचारी को ओढ़ने के लिए काले मृग की छाल, क्षत्रिय को रुरुमृग तथा वैश्य को बकरे के चमड़े का प्रयोग करना चाहिए। सन (बोरिया बनाने में प्रयोग की जाने वाली सुतली), क्षौम (रेशम) तथा ऊन के बने कपड़े (धोती और कौपीन के स्थान पर) धारण करें।"[५] बौधायन गृह्यसूत्र के अनुसार वस्त्रखण्ड ब्रह्मचारी के घर पर संस्कार के ठीक पूर्व कात कर बुना जाता था।"[६]

१- याज्ञवल्क्य स्मृति- १.१४; ब्रह्मोक्त याज्ञवल्क्य स्मृति- ८.२७
२- पारस्कर गृह्यसूत्र - २.५, ३६-३८
३- येत्त क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु। अथर्ववेद - ८,२,१७
४- अथर्ववेद - २,१३,३
५- कार्ण्णरौरववास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः।
वसीरन्नानुपूर्व्येण शाणक्षौमाविकानि च ।। मनुस्मृति - २-४३
६- वासः सद्यः कृत्तोतम्। बौधायन गृह्यसूत्र - २.५.११

गौतम के अनुसार ब्राह्मण को सन का, क्षत्रिय को रेशम का, वैश्य को बकरी के रोएँ का तथा तीनों वर्णों के पहनने के लिए कपास के सूत का वस्त्र होना चाहिए।"[१] आपस्तम्ब गृह्यसूत्र के अनुसार वस्त्रों को रंगा जाता था। सबका कषाय या गेरू में रंगा जाता था। ब्राह्मण का वस्त्र खाकी, क्षत्रिय का मजीठ रंग या लाल रंग का और वैश्य का हल्दी के रंग का या पीला होना चाहिए।"[२] आजकल मात्र पीले वस्त्र ही प्रचलन में हैं। अन्य सभी रंग लुप्त हो गये हैं।

मेखला-

उपनयन संस्कार में मेखला का विशेष महत्त्व है। अथर्ववेद में मेखला के विषय मे कहा गया है कि वह (मेखला) ऋषियों का शस्त्रास्त्र है तथा वह छात्र के व्रतों की रक्षा करते हुए शत्रुाओं का नाश करने वाली है।"[३] मनु के अनुसार ब्राह्मण की करधनी मूंज की तथा ३ लड़ी की होनी चाहिए। क्षत्रिय की मौर्वी अर्थात् धनुष की डोरी की और वैश्य की सन की मेखला होनी चाहिए।"[४] यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ब्रह्मचारियों की मेखला (कमरपेटी) बनाने के लिए सूत, मूंज और सन आदि नहीं मिल सके तो इनके लिए क्रमशः कुश, अशमत्तक (पथरीली धरती पर उगी घास,तृण) तथा (बल्वज

१- गौतम - १.७-८

२- यदि वासांनि वसीरन् रक्तानि वसीरन् काषायं ब्राह्मणो मञ्जिष्ठं
क्षत्रियो हारिद्रं वैश्य इति। आपस्तम्ब गृह्यसत्र-१.१६.१०

३- अहूतास्यमित हुत ऋषिणामायुधम्।
पूर्वा व्रतस्य प्राश्नती वीरध्नी भव मेखले।।अथर्ववेद - ६.१३३,२

४- मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लाक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला।
क्षत्रिस्य तु मौर्वी ज्या वैश्यस्य शणतान्तवी।। मनुस्मृति- २,४४

झाड़ियों के पास उगी घास) की तीन लड़ी वाली कमर पट्टी (मेखला) बनानी चाहिए। इनमें एक, तीन या पांच गांठे बांधनी चाहिए।"[१] आश्वलायन के अनुसार यह तीहरे सूत्र से बनायी जाती थी। यह इस तथ्य का प्रतीक था कि ब्रह्मचारी सर्वदा तीन वेदों से आवृत्त रहें।"[२] पुरोहित कहता है कि- चूँकि "मैं यम का छात्र हूँ इसलिए मैं प्राणियों से यम के लिये इस पुरुष को मांगता हूँ। मैं उसे ब्रह्म, तप और श्रम की मेखला से बांधता हूँ।"[३] मेखला ब्रह्मचारी को यह सूचित करती थी कि वह श्रद्धा की तप से उत्पन्न दुहिता, ऋषियों की भगिनी"[४] तथा जीवों का कल्याण करने वाली है। वह उसके व्रत के गोपन में समर्थ है तथा दुष्ट भावों से उसकी रक्षा करेगी।"[५]

दण्ड-

दण्ड की लम्बाई विद्यार्थी के वर्ण के अनुरूप निर्धारित थी। ब्राह्मण का दण्ड उसके केशों को और क्षत्रिय का दण्ड ललाट को स्पर्श करता हुआ तथा वैश्य का दण्ड उसकी नासिका जितना ऊँचा होता था।"[६] मनु के अनुसार ब्राह्मण ब्रह्मचारी को बेल या पलाश पेड़ की लकड़ी की, क्षत्रिय

१- मुञ्जालाभे तु कर्त्तव्याः कुशाश्मन्तकबल्वजैः।
त्रिवृत्ता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा। मनुस्मृति-२,४५

२- वेदत्रयेणावृतोऽहमिति मन्येत स द्विजः। वीर मित्रोदय सं०भा०१ पृ०४३२

३- मृत्योरह ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूतात्पुरुषं यमाय।
तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणनयैनं मेखलया सिनामि।। अथर्ववेद- ६,१३३,३

४- श्रद्धया दुहिता तपसोधिजाता स्वस ऋषीणा भूतकृतां बभूव।
सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च।। अथर्ववेद- ६,१३३,४

५- या त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषय परिवेधिरे।
सा त्वं परिष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले।। ६.१३३,५

६- आपस्तम्ब गृह्यसूत्र - १.१६.१०।
केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डःकार्यः प्रमाणतः।
ललाटसम्मितो राज्ञः स्यान्तु नासान्तिको विशः।। मनुस्मृति-२,४८

ब्रह्मचारी को बड़ अथवा खदिर पेड़ की लकड़ी की और वैश्य की पीलू या गूलर की लकड़ी की लाठी रखनी चाहिए।"[१] मनु के अनुसार तीनों वर्णों के ब्रह्मचारियों के दण्ड सीधे, गांठ रहित, सुंदर, उद्वेग न उत्पन्न करने वाले, वल्कल सहित एवं आग से न जले हुए होने चाहिए।"[२]

यज्ञोपवीत-

यज्ञोपवीत तीन सूत्रों का सम्मिश्रण है और प्रत्येक सूत्र में ३ धागे या तन्तु होते हैं।"[३] ब्रह्मचारी को यज्ञोपवीत धारण कराते समय आचार्य उपयुक्त मंत्र का उच्चारण करता था, जिसमें बालक के अयुष्य, बल तथा तेज के लिए प्रार्थना की जाती थी।"[४] ब्राह्मण ब्रह्मचारी का जनेऊ कपास की रूई से बने सूत का, क्षत्रिय ब्रह्मचारी का जनेऊ सन से बने धागे का और वैश्य ब्रह्मचारी का जनेऊ भेड़ के बाल से बने धागे का होना चाहिए। ब्राह्मण के जनेऊ में तीन लड़ियां होनी चाहिए और प्रत्येक में एक गांठ लगी होनी चाहिए।"[५] मनु के अनुसार दूसरे का पहना हुआ यज्ञोपवीत नहीं पहनना चाहिए।"[६]

१- ब्राह्मणो बैल्वपलाशो क्षत्रियो वाट खादिरौ।
पैप्लोदुम्बरौ वैश्यौ दण्डानर्हन्ति धर्मतः ।। मनुस्मृति - २,४७

२- ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणाः सौम्यदर्शनाः।
अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचोऽनग्निदूषिताः।। मनुस्मृति- २,४६

३- कौशं सूत्रं वा त्रिस्त्रिवृद्यज्ञोपवीतम्। बौधा० - १.५.५
यज्ञोपवीतं कुर्वीत, सूत्रेण नवतन्तुकम्। देवल० स्मृति चन्द्रिका०- १ पृ० -३१

४- यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमभग्रयं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।। पा०गृ०सू०- २२, १३

५- कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत्।।
शाणसूत्रमयं राज्ञो वैश्याविकसौत्रिकम्।। मनुस्मृति- २, ४६

६- उपानहौ च वासश्च धूतमन्यैर्न धारयेत्।
उपवीतमलङ्कार स्रजं करकमेव च ।। मनुस्मृति - ४,६६

इनके अनुसार यज्ञोपवीत पहनने की तीन विधियाँ हैं- १. उपवीती दाहिना हाथ उठा कर पहने अर्थात् बाएं कन्धे के ऊपर से दाहिनी काँख के नीचे लटकता हुआ। २. प्राचीनावीती- दाहिने कन्धे के ऊपर से बाएँ काँख के नीचे लटकता हुआ यज्ञोपवीत। ३. निवीती- माला की तरह गले में लटकाया हुआ यज्ञोपवीत।''[१] ऋग्वेद के दशम मण्डल के ज्ञात होता है कि उस समय आरण्यक तपस्वी चर्म धारण करते थे।''[२]

सावित्री-

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार आचार्य स्वयं बालक को गर्भ में धारण करता है, ''शिष्य पर अपना दाहिना हाथ रखने से आचार्य उसका गर्भी हो जाता है। तृतीय रात्रि में वह सावित्री-सहित ब्राह्मण के रूप में जन्म ग्रहण करता है।''[३] गृह्यसूत्रों में वर्णित यह संस्कार उपनयन के तुरन्त बाद या उपनयन के तीन वर्ष के बाद तक की अवधि में किसी समय सम्पन्न कर देना चाहिए। ओङ्कार के बाद कही जाने वाली तीन महाव्याहृतियां नाश रहित हैं और इनके बाद बोला जाने वाला गायत्री मंत्र (इसे सावित्री भी कहते हैं) प्रजापति ब्रह्मा का मुख अथवा ब्रह्म प्राप्ति का द्वार है।''[४] प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल वन (फुलवाड़ी, बाग-बगीचा आदि एकान्त स्थान) में जाकर

१- उद्धृते दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते द्विजः।
सत्ये प्राचीनावीती निवीती कण्ठ सज्जने।। २,६६

२- ऋग्वेद - १०.१.६.२

३- शतपथ ब्राह्मण्- ११,५,४,१२

४- ओङ्कारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम्।। मनुस्मृति- २.८४

(नदी, सरोवर, झील आदि के) जल के पास एकान्त में एकाग्रचित्त होकर सन्ध्या वन्दनादि नित्य कर्म के साथ द्विज गायत्री का जप करें । द्विज के लिए सन्ध्या-वन्दना आदि के साथ-साथ नियमित रूप से गायत्री का जप करना आवश्यक है।"[1]

स्त्रियों का उपनयन

वैदिक काल में स्त्रियों को भी पुरुषों की तरह शिक्षित एवं संस्कारित किया जाता था। अथर्ववेद संहिता में कहा गया है कि कन्या ब्रह्मचर्य आश्रम में निवास करते हुए युवा पति प्राप्त करे।"[2] गोभिल गृह्यसूत्र के अनुसार लड़कियों के उपनयन के प्रतीक के रूप में यज्ञोपवीत धारण करना पड़ता था।"[3] भृगु के अनुसार स्त्रियाँ १५ वर्ष तक गुरूकुलों में पढ़ें और शादी के बाद अपने पति से पढ़ सकती हैं।"[4] मेखला का महत्त्व उपनयन संस्कार में विशेष रूप से स्वीकार किया जाता था। मेखला के प्रभाव से वेदाध्यायी के शत्रुओं का नाश होता था ऐसा अथर्ववेद से प्रतीत होता है जिसमें कहा गया है कि मेखला ऋषियों की शस्त्रास्त्र है।"[5] मनु के अनुसार ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य स्त्रियों के सभी जातकर्म आदि संस्कार उसी आयु में

१- अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वाऽरण्यं समाहितः।। मनुस्मृति- २,१०७

२- ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। अथर्ववेद- ११,५,१८

३- गोभिल गृह्यसूत्र -२.१.१९

४- स्त्रियः पंचदशाब्दान्तं, शास्त्रं गुरुकुले ततः।
भर्तृतश्च पठेयुस्तद् धर्मपालनपूर्वकम् ।। भृगु०- १०,२१

५- आहुतास्याभिहुतं ऋषीणामयुधम्।
पूर्वा व्रतस्य प्राश्नती वीरघ्नी भव मेखले।। अथर्ववेद- ६,१३३,२

करने चाहिए जिसमें उस वर्ण के पुरुषों के होते है। परन्तु इन संस्कारों को करते समय वेदमंत्रों का पाठ नहीं करना चहिए।"[1] व्यास के अनुसार स्त्रियों के सभी संस्कार बिना मंत्र के होने चाहिए।"[2]

मनु के अनुसार वेद में पुरुषों के लिए विवाह संस्कार की जो विधि बताई गई है वही विधि स्त्रियों के लिए भी है। स्त्रियों के लिए विवाह के बाद पति के अधीन रहने का विधान है। लेकिन विवाह से पहले उसे भी गुरुकुल में रहकर विद्या प्राप्त करने तथा प्रातः और सायं होम करने का अधिकार है। इसी तरह स्त्रियों के भी पुरुषों के समान गर्भाधान आदि सभी सोलह संस्कार करने चाहिए। जिस तरह "जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः" पुल्लिंग प्रयोग होने पर भी स्त्रियों और पुरुषों सब के लिए समान अर्थ रखता है। इसी तरह संस्कार स्त्रियों के लिए भी समान अर्थ रखता है।"[3] याज्ञवल्क्य स्मृति में स्त्रियों के सभी संस्कार बिना मन्त्रों के करने चाहिए।"[4]

१- अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम्।। मनुस्मृति- २, ७६

२- व्यास स्मृति - १.१५-१६

३- वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहर्थोऽग्निपरिक्रमा।। मनुस्मृति-२.६०

४- तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां, विवाहस्तु समन्त्रकः।। याज्ञवल्क्य स्मृति- १.१३

अल्तेकर ने अपनी पुस्तक "एजुकेशन इन एन्शियन्ट इण्डिया" में वैदिककाल में स्त्रियों के लिए वेदाध्ययन परम्परा की पुष्टि की है। इसके लिए वे ब्रह्मचर्य की प्रतीक "मौञ्जी" (मूँज की मेखला) धारण करती थीं।"[1] संस्कार प्रकाश में कहा गया है कि स्त्रियों का समावर्तन उनके रजस्वला होने से पूर्व हो जाना चाहिए।।"[2] भृगु के अनुसार लड़के-लड़कियाँ पाँच वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत धारण करके वेद पढ़ें। पिता बालक एवं बालिकाओं को पाँच साल की अवस्था में वेद-वेदाङ्ग पढ़ने के लिए गुरुकुलों में भेज दें।"[3]

ऋग्वेद संहिता में यज्ञोपवीता नारी के गुणों की चर्चा मिलती है। जिससे ज्ञात होता है कि उपनीतानारी यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् अत्यन्त प्रबल हो जाती थी। यह बात सत्य भी है क्योंकि अशिक्षा व्यक्तियों का सबसे बड़ा शत्रु है।"[4] सम ने कहा है कि प्राचीन काल मे मूँज की मेखला बाँधना (उपनयन संस्कार सम्पन्नता) नारियों के लिए भी विदित था। उन्हें वेद पढ़ाया जाता था। वे गायत्री मंत्र का उच्चारण करती थीं। उन्हें अपने पिता, चाचा, भाई पढ़ा सकते थे। अन्य कोई भी बाहरी पुरुष नहीं पढ़ा सकता था। वे घर में ही भिक्षा माँग सकती थीं। उन्हें मृगचर्म, वल्कल

१- पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्ययनं च वेदानां सावित्री वचनं तथा। (एजुकेशन इन एन्शियेन्ट इण्डिया)

२- प्राग्रजसः समार्वतम् इति हारीतोक्त्या। संस्कार प्रकाश- पृ० ४०४

३- भृगु०- ३.४०-४३

४- देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धा दधाति परमे व्योमन् ।। ऋग्वेद- १०।१०९।४

वस्त्र नहीं पहनना पड़ता था और वे जटाएँ रखती थीं।''[१] अथर्ववेद-संहिता के अनुसार आज भी स्त्री-समाज को यज्ञाधिकार के साथ यज्ञोपवीत एवं वेदाध्ययन का अधिकार प्रदान करती क्योंकि, योषितः पद के लिए ''यज्ञियाः'' विशेषण आया है, जिससे पता चलता है कि यज्ञ करने और कराने में निपुण नारी।''[२]

१- पुराकाले .... जटाधारणमेव च। संस्कार प्रकाश- पृ० ४०२-४०३

२- शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्र पृथक् सादयामि।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि मोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददातु तन्मे।। अथर्ववेद- ६।१२२।५

१२- विवाह

वैदिक साहित्य में विवाह एक पवित्र संस्कार माना जाता था। मनु ने विवाह के आठ भेद बताए हैं।"[१] वौधायन ने भी आठ प्रकार के विवाहों का वर्णन किया है।"[२] वशिष्ठ ने ६ प्रकार के विवाह बताये हैं।"[३] विवाह संस्कार की नियोजना से व्यक्ति का जीवन सुगठित होता है तथा सुव्यवस्थित आधार पर विकसित होता है। विवाह के माध्यम से ही व्यक्ति सभी धार्मिक कर्तव्यों का निर्वाह करता है। धर्म का पालन, पुत्र की प्राप्ति एवं रति का सुख विवाह के प्रधान उद्‍देश्य माने गये हैं।"[४] विवाह के लिये संस्कृत-साहित्य में अनेक शब्द प्रचलित हैं- जैसे उद्‍वाह, परिणय, उपयम, पाणिग्रहण आदि। "उद्‍वाह" का अर्थ है, वधू को उसके पिता के घर से ले जाना। "परिणय" का अर्थ है, चारों ओर घूमना, यानी अग्नि की परिक्रमा करना। "उपयम" का अर्थ है, किसी को निकट लाकर अपना बनाना तथा "पाणिग्रहण" का अर्थ है वधू का हाँथ ग्रहण करना। हेमचन्द्र ने 'उढायाम' सूत्र से पाणिग्रहण का अर्थ लिया है, जिसकी व्याख्या पाणिगृहीती शब्द से की है। पाणिग्रहण

१- ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः । मनु स्मृति - ३.२१

२- अष्टौ विवाहाः। बौधायन- १,११,१

३- षड् विवाहाः । ब्राह्मो दैव आर्षो गान्धर्वः क्षात्रो मानुषश्चेति। वशिष्ठ स्मृति - १.२८.२९

४- अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रुषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च हि। मनु - ६.२८

के द्वारा पुरुष स्त्री का वरण करता है। विवाह सम्पन्न हो जाने पर पत्नी को "पाणिगृहीता" कहा जाता है। संस्कार की विधि के अनुसार 'पाणिगृहीता' शब्द स्त्री के लिये प्रयोग किया जाता है।"[१]

मनु के अनुसार प्रथम चार प्रकार के विवाह में ब्रह्म तेज वाले और सज्जन पुत्र होते हैं। ये शतायु, पवित्र आत्मा और यशस्वी होते हैं।"[२] शेष चार असुर आदि से उत्पन्न पुत्र असत्यवादी, नास्तिक और निन्दित कर्मों को करने वाले होते हैं।"[३] विवाह के अधोलिखित आठ प्रकार हैं।

१- ब्राह्म विवाह

ये विवाह सर्वाधिक शुद्ध माना जाता था। स्मृतियों के अनुसार विद्वान और शीलवान् वर को बुलाकर कन्या को वस्त्र और अलंकारों से अलंकृत किया जाता था। और उसका दान किया जाता था।"[४] याज्ञवल्क्य के अनुसार इस विवाह से उत्पन्न पुत्र इक्कीस पीढ़ियों को पवित्र करता था।"[५] वशिष्ठ के अनुसार वर की इच्छा के अनुकूल जब संकल्प के साथ कन्या दी जाती

१- पाणिगृहीति प्रकाराः शब्दा उढायां स्त्रियां ङ्यन्ता निपात्यंते।
यथा–पाणिर्गृहोतोऽस्याः पाणौ वा गृहीता पाणिगृहीति एवं करगृहीति। शब्दानुशासन, २,४,५१,२,४,५२

२- ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानूपूर्वेशः।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्राः जायन्ते शिष्टसम्मताः । मनुस्मृति ३.३९
रूपसत्त्व गुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः।
पर्याप्त भोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः। मनुस्मृति ३-४०

३- इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः। मनुस्मृति- ३.४१

४- आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः। मनुस्मृति ३-२६

५- तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम्। याज्ञ० स्मृति १.५८

है तो उसे ब्राह्म विवाह कहा जाता है।''[१] सूर्या के साथ सोम का विवाह इसी प्रकार का है।''[२]

२- दैव विवाह

मनु के अनुसार यज्ञ-यज्ञादि विधिवत् करवाने वाले ऋत्विज् का वरण करके वस्त्र तथा आभूषणों से अलंकृत कन्या का दान करना 'दैव विवाह' कहा जाता है।''[३] ऋत्विज् का यज्ञ के समय यज्ञशाला में कराया गया विवाह दैव विवाह कहलाता है।''[४] याज्ञवल्क्य के अनुसार दैव विवाह से उत्पन्न पुत्र १४ पीढ़ियों को पवित्र करता है।''[५] याज्ञवल्क्य के अनुसार जब पिता अलंकृत एवं सुसज्जित कन्या का किसी पुरोहित से यज्ञ के अवसर पर विवाह करा देता है, तो वह दैव यज्ञ कहलाता है।''[६] मनु का कथन है कि दैव विवाह वाली स्त्री से उत्पन्न पुत्र या पुत्री आगे और पीछे की ७ पीढ़ी के वशंजों को पाप से मुक्त करती है।''[७]

१- इच्छत उदकपूर्व या दद्यात् स ब्राह्मः। वशिष्ठ स्मृति १.३०
२- १०.८५
३- यज्ञे तु वितते सम्यग्वित्जे कर्म कुर्वते।
अलङ्कृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते।। मनुस्मृति ३.२८
४- दक्षिणासु नीयमानास्वन्तर्वेद्यृत्विजे सदैवः। बौधायन स्मृति - १.३१
५- चतुर्दर्श प्रथमजः। याज्ञवल्क्य स्मृति - १.५६
६- यज्ञस्य ऋत्विजे दैवः। याज्ञवल्क्य स्मृति - १.५६
७- दैवोढाजः सुतश्चैव सप्त-सप्त परावरान्।
आर्षाढाजः सुतस्त्रींस्त्रीन्षट्षट् कायोढ जः सुत'। मनु स्मृति - ३.३८

३- आर्षविवाह

मनु के अनुसार विवाह में जब गो-मिथुन (एक गाय और एक बैल) का जोड़ा वर से ले कर के विधिपूर्वक कन्या दी जाए तो वह आर्ष विवाह कहलाता है।"[१] वीर मित्रोदय के अनुसार यह कन्या का मूल्य नहीं है, क्योंकि इसका परिणाम सीमित है। इसके अतिरिक्त यह कन्या के साथ ही वर को दे दिया जाता था।"[२] याज्ञवल्क्य के अनुसार जब दो गाएँ लेकर कन्या को दी जाती है, तब आर्ष विवाह कहलाता है।"[३]

४- प्राजापत्य विवाह

मनु के अनुसार प्राजापत्य विवाह उसे कहते हैं "जिसमें तुम दोनों साथ में धर्माचरण करो" इस शुभ कामना के साथ वर को आदरपूर्वक वस्त्र और अलंकारों से सज्जित कन्या प्रदान की जाती है।"[४]

१- एवं गोमिथुनं द्वेवा वरादादाय धर्मतः।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते।। मनुस्मृति - ३.२९

२- धर्म निमित्तो ह्यसौ सम्बन्धो न लोभनिमित्तकः।
गोमिथुन गृहणन्च स्वयं कन्योपकरणदानासमर्थस्य तद्धानार्थ वेदितव्यम् वीरमित्रोदय सं०भा० १, पृ० ८२२

३- आदायार्षस्तु गोद्वयम्। याज्ञवल्क्य स्मृति-१, ५९

४- सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः।। मनुस्मृति - ३.३०

५- आसुर विवाह

मनु के अनुसार कन्या के माता-पिता तथा सगे सम्बन्धियों को तथा स्वयं कन्या को यथाशक्ति धन देकर अपनी इच्छा से वर द्वारा कन्या को स्वीकार करना आसुर विवाह कहलाता है।''[१] आषस्तम्बस्मृति के अनुसार शुद्र को भी कन्यादान करते समय शुल्क नहीं लेना चाहिए। शुल्क को स्वीकार करना प्रकारान्तर से कन्या का विक्रय ही है।''[२]

६- गान्धर्व विवाह

मनु के अनुसार गान्धर्व विवाह उसे कहते हैं, जिसमें कन्या तथा वर स्वेच्छा से एक-दूसरे को पसन्द करके विवाह बंधन में बंध जाते हैं। इस तरह का विवाह काम-जन्य भावना पर आधारित होता है।''[३] अथर्ववेद में गान्धर्व पतियों का उल्लेख किया गया है।''[४] ऋग्वेद के अनुसर वही वधू भद्रा कहलाती है, जो सुन्दर वेश-भूषा से अलंकृत होकर जन समुदाय में अपने पति (मित्र) का वरण करती है। यह विवाह सामान्य प्रतीत होता है।''[५]

१- ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः ।
कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते।। मनुस्मृति - ३.३१

२- आददीत न शूद्रोऽपि शुल्कं दुहितरं ददत्।
शुल्कं हि गृह्ण कुरुते छन्नं दुहितृविक्रयम्।। आपस्तम्ब०

३- इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भव।। मनुस्मृति - ३.३२

४- जाया इदं वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो यूयम्। अथर्व०- ५.३७.१२

५- ऋग्वेद - १०.२७.१७

७- राक्षस विवाह

मनु के अनुसार कन्या पक्ष वालों की हत्या कर अथवा उनके हाथ-पांव का छेदन कर तथा घर-द्वार आदि तोड़ कर रोती या गाली देती हुई कन्या का बल से हरण कर अपने अधिकार में करना "राक्षस विवाह" कहा जाता है। इसे विलोम विवाह भी कहा जाता है।"[1] याज्ञवल्क्य का मत है कि इस विवाह का उद्भव युद्ध से हुआ है।"[2] मनु के अनुसार क्षात्रियों के लिए राक्षस विवाह प्रशस्त है।"[3]

८- पैशाच विवाह

मनु के अनुसार सोती हुयी कन्या के साथ मद्यपान अथवा अपने शील की रक्षा में प्रमादग्रस्त किसी कन्या के साथ मैथुन करके उसे विवाह करने का मजबूर कर देना, "पैशाच विवाह" कहलाता है।"[4] इसे अत्यन्त निन्दनीय माना गया है। याज्ञवल्क्य किसी कन्या के साथ छलपूर्वक किये गये विवाह को पैशाच मानते हैं।

१- हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।
प्रसह्यकन्या हरणं राक्षसो विधिरुच्यते।। मनुस्मृति - ३.३३

२- राक्षसो युद्धहरणादिति। याज्ञवल्क्य स्मृति

३- राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं । मनुस्मृति - ३.२४

४- सुप्तां मत्तां प्रमन्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचः प्रथितोऽधमः ।। मनुस्मृति ३.३४

विवाह का उद्देश्य

विवाह के मुख्य दो उद्देश्य हैं। पत्नी पति को धार्मिक कृत्य के योग्य बनाती है। वह पुत्र की उत्पत्ति करती है और पुत्र ही पिता को नरक से बचााता है।"[1] मनु के अनुसार गृहस्थ जीवन के सभी कार्य अर्थात् संतानोत्पति, धर्मकार्य, सेवा उत्तम रति पितरों का उद्धार व स्वर्ग के दिव्य सुखों की प्राप्ति- ये सब स्त्री के ही अधीन हैं अर्थात् स्त्री के माध्यम से ही संभव है।"[2]

वधू का स्नान

इस अवसर पर सात नदियों का जल लाकर।"[3] अनेकों प्रकार से पवित्र करके जुये पर बैठा कर कन्या को नहलाया जाता था। जो मंत्र इस प्रकार है - "तुम्हें स्वर्ण, पवित्र जल, जुआ और स्तम्भ आदि पवित्र करें एवं मङ्गलमय होकर सैकड़ों प्रकार के पवित्र जल तुम्हारे लिये शुभकारी हों। तुम्हारे पति का शरीर शुभ हो तथा उसका स्पर्श तुम्हारे लिये मङ्गलकारी होवे।"[4]

१- पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्, पितरं त्रायते सुतः। विष्णु -१५.४१

२- अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रुषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च हि।। मनुस्मृति - ९,२८

३- आपः सप्त सुसुवुर्देवीस्ता नो मुञ्जन्त्वहंसः।। अथर्व० - १४,२,४५

४- शं ते हिरण्यं शमु सत्त्वायः शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्द्मा।
शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु शमु पत्या तन्वं सं स्पृशस्व।। अथर्व० - १४,१,६१

नवीन वस्त्र परिधान

स्नान के पश्चात् वधू को वस्त्र पहनाया जाता था। विवाह सम्बन्धी इस वस्त्र को "वाधूय" कहा जाता था। उनका ऐसा विश्वास था कि यह वाधूय वस्त्र देवों द्वारा मनु को दिया गया था। उसके वस्त्रों में चादर नाभि के पास पहनने वाले वस्त्र और शरीर-प्रधान वस्त्र उल्लेखनीय है। इसको पहनने पर उसका शरीर सुशोभित हो जाता था।"[१]

आशीर्वचन्

विवाह में पुरोहित वर-वधू को आशीर्वाद देता था कि तुम दोनों पति पत्नी यहीं रहो वियुक्त न हो, पुत्र और पौत्र से मुदित होते हुए सुखपूर्वक हँसते-खेलते सम्पूर्ण आयु का उपभोग करो।"[२] वर पक्ष के लोग मङ्गलमयी वधू की आकांक्षा रखते थे।"[३] मण्डप में बैठी वधू पति के सौ वर्ष जीने की कामना करती थी।"[४]

१- या मे प्रियतमा तनूः सा मे विभाय वाससः।
तस्याग्रे त्वं वनस्पतेः नीवि कृणुष्व मा वयं रिषाय।। अथर्व० -१४, २,५०

२- इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ।। अथर्व० - १४,१,२२

३- सा नो अस्तु सुमङ्गली । अथर्व० - १४,१,६०

४- इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपत्तिका।
दीर्घायुरस्तु मे पति र्जीवाति शदः शतम् ।। अथर्व० - १४,२,६३

दीक्षा

इस संस्कार के लिए दीक्षा का भी अपना विशिष्ट महत्त्व है। गौतमी तंत्र में इस दीक्षा को गुरु प्रदान करता हुआ दर्शाया गया है।''[१] अथर्ववेद में कहा गया है कि कन्यायें पिता के घर से पति के यहाँ जाने की इच्छा करती हैं, इन्हें दीक्षा प्राप्त करने दिया जाय।''[२] मंत्र के द्वारा दुष्कर्मों को नष्ट करने और वस्त्रादि पर किये गये इन्द्रजाल को दूर हटाने का प्रयत्न किया जाता था।''[३] इस प्रकार दीक्षा से वर-वधू यज्ञ करने योग्य और शुद्ध हो जाते थे।''[४]

पाणिग्रहण

वैदिक काल से पाणिग्रहण विधि प्रचलित है। जिस प्रकार अग्नि ने भूमि का दाहिना हाथ पकड़ा था, उसी प्रकार मैं तुम्हारा हाँथ ग्रहण करता हूँ, तुम मेरे साथ रहते हुये सन्तति और धन से दुखी न होओ।''[५] वधू का हाँथ पकड़कर वर कहता था कि ''सौभाग्य के लिये मैं पति बन कर तुम्हारा हाँथ पकड़ता हूँ, जिससे तुम दीर्घायु होओ। भग, अर्यमा और पुरंधि ने

१- गुरुमुखात् स्वेष्टेदेवमन्त्रग्रहणम्। गौतमीय तंत्र - ७,२

२- उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतियती।
अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा।। अथर्व० - १४,२,५२

३- यछुष्कृतं ....कम्बले मृज्महे दुरितं वयम्। अथर्व०- १४,२,६६

४- अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्राण आयुंषि तारिषत्। अथर्व०- १४,२,६७

५- येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम्।
तेन गृहणामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च । अथर्व० १४,१,४८

तुमको मुझे गृहपत्नी बनाने के लिये दिया है।"[१] तुम मेरी पत्नी हो मैं तेरा धर्म से पति हूँ।"[२]

अश्मारोहण

वैदिक संहिताओं के अनुसार पहले अश्मारोहण है उसके पश्चात् पाणिग्रहण का मंत्र आया है परन्तु लौकिक रीति में पहले पाणिग्रहण होता है उसके बाद अश्मारोहण होता है। मैं तुम्हारे लिए सन्तति के हेतु मङ्गलकारी और दृढ़ पत्थर (अश्मा) को पृथिवी पर रखता हूँ। उस पर तुम चढ़ो और सविता तुम्हें दीर्घायु करें।"[३] एक मंत्र में कहा गया है कि हे पत्नी, तुम्हें पृथिवी के दूध से बाँधता हूँ, तुमको औषधियों के रस से बाँधता हूँ और तुम्हें संतति, धन आदि से युक्त करता हूँ।"[४]

वर के घर के लिए प्रस्थान

विवाह संस्कार सम्पन्न हो जाने के बाद वधू पितृगृह को छोड़कर पति के घर प्रस्थान करती है। ये कन्यायें पिता के घर को छोड़ कर पति के घर जाने को उद्यत हैं।"[५] उसके प्रस्थान करने पर सम्भवतः उसके घर वाले आँसू गिराते थे।"[६] विदाई के अवसर पर कहा जाता था कि जिस

१- गृहणामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः । भगोअर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः५। अथर्व० - १४,१,५०
२- पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव। अथर्व०- १४,१,५१
३- स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे ।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चादीर्घं त आयुः सविता कृणोतु। अथर्व०- १४,१,४७
४- सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम्
सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन।। अथर्व०- १४,२,७०
५- उषतीः कन्यला इमाः पितृलोकात्पति यतीः। अथर्व०- १४,२,५२
६- जीवं रुदन्ति । अथर्व० १४,१,४६

मार्ग से मित्रों सहित वर जाता है वह मार्ग निष्कण्टक और सुगम हो।"[१]

वधू रूप सूर्या पुष्पों से सुसज्जित विभिन्न रूप वाले तथा पीले रंग के वस्त्र से ढंके हुए सुन्दर पहिये वाले रथ में चढ़कर पति के वहाँ गई थी।"[२]

१- अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो येभिः संखायो यन्ति नो वरेयम्। अथर्व० - १४,१,३५

२- सुकिंशुक वहतुं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणुत्वम्।। अथर्ववेद - १४-१,६१

आभूषण

वैदिक काल से ही व्यक्ति सौन्दर्य प्रेमी रहा है, जिसका पता उसके विभिन्न प्रकार के वस्त्रों और आभूषणों से ज्ञात होता है। ऋग्वेद से पता चलता है कि स्त्री और पुरुष दोनों ही स्वर्ण और रजत के आभूषणों के प्रेमी थे।

सिर के आभूषण

उषा के समान अनुराग वाली नववधू जब पति साथ गृहगमन होती थी, तब उसे कुरीर और ओपश नामक आभूषण से सजाया जाता था। इस आभूषण का वर्णन सूर्या विवाह में मिलता है।"[1] स्त्रियों के सिर के आभूषण का नाम सभी संहिताओं में कुरीर मिलता है, लेकिन वाजसनेयि संहिता में सिनीवाली को सुकुरीरा कहा है।"[2] अथर्ववेद में भी कुरीर शब्द स्त्रियों के सिर के आभूषण के अर्थ में प्रयोग हुआ है।"[3] अथर्ववेद के एक और मंत्र में ओपश शब्द का प्रयोग हुआ है।"हे शिखर वाली शाले! तेरी छः खिड़कियों की जाली स्त्रियों के ओपश के समान विस्तृत हजारों छिद्रो से युक्त है, यह ओपश की भाँति ज्ञान पूर्वक कसा गया है। इसे विशेष रूप से खोलते हैं।"[4]

१- स्तोमा आसत्प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत्पुरोगवः। ऋक्-१०,८५,८

२- सिनीवाली सुकपर्द्दा सुकुरीरा स्वौपशा।
सा तुभ्यमदिते मह्योखान्दधाति हस्तयोः।। वाजसनेयिसंहिता ११.५६

३- क्लीबं क्लीबं त्वाकरं वध्रे वध्रि त्वाकरमरसारसं त्वाकरम्।
कुरीरमस्य शीर्षणि कुम्बं चाधिनिदध्मसि ।। अथर्ववेद ६,१३८,३

४- अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति।
अवनद्धमभिहितं ब्रह्मणा वि चृतामसि।। अथर्ववेद ९,३,८

कान के आभूषण

कान के आभूषण को आजकल प्रचलित भाषा में कानपाशा कहा जाता है। ऋग्वेद में कहा गया है कि शत्रुओं को पीस देने वाले और त्रास देने वाले इन्द्र ! तुम्हारी ही कीर्ति सुनी जाती है, तुम हमें असंख्य कर्णाभरण प्रदान करो।"[1] अथर्ववेद में व्रात्य का स्वरूप श्रद्धा नारी के समान है। मागध उसका मित्र है, विज्ञान उसका वस्त्र है, दिन उसकी पगड़ी है, रात्रि उसके केश हैं, सूर्य और चन्द्र उसके कुण्डल हैं, तारे उसके देह पर विराजमान मणियां हैं।"[2]

ग्रीवा के आभूषण-

ऋग्वेद में निष्क नामक आभूषण का वर्णन जो ग्रीवा में धारण किया जाता था। मंत्रो के पाठ करने वाले अन्नाभिलाषी गले में निष्क धारण किये हुए यजमान तथा ऋत्विज् स्तोत्रों द्वारा अन्तरिक्षवर्ती अग्नि के देदीप्यमान बल को बाँधते हैं।"[3] निष्क अथर्ववेद में भी वर्णित है- "हे देवताओं ! जिस प्रकार हिंसक जन्तु को चारों ओर त्वचा को छेदने-वाली बर्छियों से

१- उत नः कर्णशोभना पुरूणि धृष्णवा भर।
त्वं हि शृण्विषे वसो।। ऋक् ८,७८,३

२- श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं ।
वासोहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः।। अथर्ववेद १५,२,५

३- आश्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टयः।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः। ऋक् - ५,१९,३

आहत करके वश में कर लिया जाता है या सीकचे लगाकर वश में कर लिया जाता है। उसी प्रकार इस कृत्या को उसी प्रकार का उपाय करके वश में कर लो या जैसे निष्क गला दबाता है इसका भी गला दबा दो।"[१]

बाहु के आभूषण

ऋग्वेद के कुछ मंत्रों में बाहु के आभूषण वाले मंत्र भी हैं। हे इन्द्र ! तुम जो असुरों को जीत कर उनके भुजा का आभूषण लाये हो, वह अपने उन उपासकों को दो जो कुशा का आसन बिछाये तुम्हारी वृद्धि के हेतु स्तुति कर रहें हों।"[२] वाजसनेयि संहिता में इसका वर्णन कुछ इस प्रकार मिलता है- हे हिरण्यबाहू! दिशाओं के अधिपति सेनापति आपको नमस्कार है। पर्ण रूप हरिकेश वृक्षरूप पशुओं के पति रुद्रों को बारम्बार नमस्कार है। कान्तिमान् पीत वर्ण वाले रुद्र को नमस्कार है, मार्गों के पालन करने वाले उपपीत धारण करने वाले हरिकेश रूद्र को नमस्कार है। गुणी पुरुषों के स्वामी रुद्र को नमस्कार है।"[३]

१- रिश्यस्येव परीशासं परिकृत्य परित्वचः।
कृत्या कृत्याकृत्ते देवा निष्कमिव प्रति मुञ्चत।। अथर्ववेद - ५,१४,३

२- या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वा असुरेभ्यः।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्त बर्हिषः।। ऋक् - ८, ९७, १

३- नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशाश्च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः
पशुनामूपतये नमो नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनाम् पतये नमो नमो
हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानाम्पतये नमः। वाजसनेयि - १६,१८

अंगूठी

ऋग्वेद में सविता को हिरण्यपाणि कहा गया है- हिरण्यपाणि सविता विशेष रूप से समस्त लोकों को आकृष्ट करता है। यह आकाश तथा पृथिवी दोनों के मध्य गमन करता है। रोगादि पीड़ाओं को दूर करता है, प्रकाश समूह का उत्पादन करता है, अन्धकार को नष्ट करता है तथा पृथिवी और आकाश को प्रकाश से भर देता है।"[1]

अथर्ववेद में हिरण्य शब्द अंगूठी के लिए प्रयुक्त है। हे कुमारी ! यह स्वर्ण की अंगूठी, यह गुग्गुल, यह अर्ध्यपाद्य के वर्तन यह सौभाग्यसूचक कुंकुम यह सब पति के सामने उपस्थित करने के हेतु तेरे प्रेम से वशीभूत होकर तुझे देते है।"[2]

कटि के आभूषण

ऋग्वेद के दशम मण्डल के सूर्यासूक्त (१०.८५) में इसका वर्णन मिलता है। विद्वानों की शिक्षा विवाह के अनन्तर देने योग्य हो, मनुष्यों की स्तुति वधू के लिये नारी को सुपथ पर रखने की करधनी हो उषा, के समान नव कान्तियुक्त वधू का वस्त्र खूब सुन्दर तथा सुखप्रद हो।"[3] अथर्ववेद में करधनी के लिए मेखला शब्द मिलता है। "हे मेखले ! तुझे प्राचीन काल

१- हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभिकृष्णेन राजसा द्यामृणोति।। ऋक्० - १/३५/९

२- इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो भगः।
एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवे।। अर्थववेद - २,३६,७

३- रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम्।। ऋक् - १०,८५,६

में ऋषियों ने शरीर के चारों ओर बांधा था, तू मेरे शरीर के चारों ओर लिपट जा जिससे मुझे दीर्घायु की प्राप्ति हो।"[1]

पैर के आभूषण

पैर के कड़े के लिए ऋग्वेद मे 'खादि' शब्द का प्रयोग मिलता है। हे विश्ववेदसः! आप ऐश्वर्य से पूर्ण हैं अच्छे स्थान में सदैव रहते हैं, सम्मिलित सेना के स्वामी हैं, गुणों और कार्यो में आपका महत्त्व है, आप अस्त्रों के चलाने वाले हैं, मोटे कड़े पहिनते हैं, आप वीर हैं; अनन्त बल से युक्त हैं।"[2]

१- यां त्वां पूर्वेभूतकृत ऋषयः परिबेधिरे।
सा त्वं परिष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले।। अथर्ववेद ६,१३३,५

२- विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्त-विषीभिर्विराप्शिनः।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्तशुभा वृष-खादयो नरः।। ऋक् - १,६४,१०

घरेलू उपयोग की वस्तुएं

वैदिक युगीन पारिवारिक जीवन में काम आने वाले विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उल्लेख है। इस प्रसंग में सर्वप्रथम सोने और बैठने के लिए निर्मित आसनों का वर्णन करते हैं।

याज्ञिक अनुष्ठानों के अवसर पर कुश के बने हुए प्रस्तर''[१] 'बर्हि' और कूर्च[२] का उपयोग किया जाता था। लेटने और बैठने के लिए चटाइयाँ भी बनाई जाती थी। कशिपु (सेज) का निर्माण सम्भवतः नरकट तथा कट (वेंत) की सहायता से होता था।[३]

राजा अपने ऐश्वर्य को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से हिरण्यकशिपु में हिरण्यकशिपु (सुवर्णासन) पर बैठता था।[४] वैदिक युग में समृद्ध जनों के अन्तःपुरों में बहुमूल्य शैय्या एवं आसनों का उपयोग होता था। ऋग्वेद के एक सूक्त में तल्प, बह्य और प्रोष्ठ पर लेटी स्त्रियों का उल्लेख हुआ है। ये तीनों आसन सम्भवतः रचना और सजावट की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न थे। तल्प एक कीमती पलंग था जिस पर विवाह के पश्चात वर-वधू समागमार्थ शयन करते थे। अथर्ववेद के विवाह सूक्त में वधू को प्रसन्नचित्त होकर तल्प पर आरोहण करने तथा पति के लिये प्रजा उत्पन्न करने का उपदेश दिया गया है।[५]

१- ऋ०, १०, ४, ४ ऋ०सं० १७, ७, ४ वाज०सं० २, १८। अथर्ववेद, १६, २, ६
२- तै० सं० ७,५,८५, बृ० दारण्यक २,११,१ ऐत० आ० ५,१.४।
शत०ब्रा० ७, १३, ४, ३, मे हिरण्यकूर्च का उल्लेख है।
३- ६, १३८, ३ उसका निर्माण स्त्रियाँ करती थी। अथर्ववेद।
४- शत० ब्रा० १३.४, ३.१।
५- आरोह तल्पं सुमनस्य मानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।। अथर्ववेद १४,२.३१।

शतपथ ब्राह्मण में नियमतः उत्पन्न पुत्र को 'ताल्प' संज्ञा दी गई है इससे भी इस विचार की पुष्टि होती है।"[1] गुरुतल्पसेवी की गणना पंच पातकियों में की गयी है।[2] तल्प की रचना सुन्दर उदुम्बर वृक्ष की लकड़ी से होती थी।[3] इससे यह सिद्ध होता है कि तल्प वैवाहिक शैय्या थी जिस पर पति पत्नी शयन करते थे।

वेद में वर्णित एक काष्ठ-निर्मित बेंच का उल्लेख मिलता है जो कि, "तल्प" और "प्रोष्ठ" के अतिरिक्त बह्य एक सुखद आसन था। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इसका उपयोग लोगो को (विशेषतः स्त्रियों को) एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए होता था। ऋग्वेद में प्रोष्ठ-शय्या स्त्रियों का उल्लेख है। प्रोष्ठ का उल्लेख तैत्तरीय ब्राह्मण में भी हुआ है।[4]

"बह्य" आधुनिक पालकी और डोली का प्राचीन प्रतिनिधि जान पड़ता है। अथर्ववेद के एक प्रसंग से यह विदित होता है कि श्रान्ता बधुएं ब्रह्य पर चढ़ती थी।[5] अतः इसका प्रयोग वधु के पति गृह-गमन के समय होता रहा होगा। सूर्य के विवाह के प्रसंग में हम सूर्या को रथ में बैठकर पतिगृह को आते देखते है।[6]

इस प्रकार की परम्परा आज भी भारत के ग्राम्य जीवन में प्रचलित

१- शत० ब्रा० १३.१.६.२।
२- छान्दोग्य उपनिषद् = स्तेनो हिरण्यस्य सुरा पिबश्च गुरोस्तल्पमावसन् ब्रह्महा चएते पतन्ति चत्वारः पन्चम्श्चारँस्तैरिति। ५.१०.६।
३- तै० ब्रा० १.२.६.५।
४- तै० ब्रा० ७.५५.८।
५- सा भूमिमा सरोहिथ बह्य श्रान्ता वधुरिव। ४,२०,३। अथर्ववेद
६- ऋ० - १०.३८

दिखाई देती है।

संहिताओं तथा ब्राह्मण[१] में आसन्दी का भी उल्लेख मिलता है। इसका उपयोग केवल बैठने के लिए होता था। अतिथियों के आने पर उन्हें प्रायः आसन्दी ही दी जाती थी। दूसरी तरफ राजाओं के अभिषेक के अवसर पर उन्हें बैठने के लिये आसन्दी की व्यवस्था थी। ऐसे अवसरों पर निश्चय ही आसन्दी का प्रयोग राज सिंहासन के रूप में होता था। यह प्रसंग जनमेजय की राजधानी के नाम 'आसंन्दीवन्त' से भी प्रमाणित होती है। ऐतरेय ब्रा० तथा शतपथ ब्रा० में आसन्दी के अंग-प्रत्यंग का विस्तृत वर्णन मिलता है जिससे अलंकारो से सुसज्जित इस आसन के गौरव का आभास मिलता है। शतपथ ब्रा० से ज्ञात होता है कि खादिर वृक्ष की लकड़ी अथवा उदुम्बर की लकड़ी से बनाया जाता था।"[२]

१- अथर्ववेद, १४.२.६५., १५.३.२,
तैत्तिरीय सं० ७.५.८.५, वाज सं० ८.५६, १६.१६।

२- ऐतरेय ब्रा० ८.५.६ शत० ब्रा० ३.३.४.२६, ५.२.१.२२, ५.४.४१।

अन्त्येष्टि संस्कार

वैदिक संहिताओं में मानव-जीवन के पार्थिव शरीर के इस अन्तिम संस्कार का विशद वर्णन मिलता है। यजुर्वेद संहिता में मृत व्यक्ति को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि हे व्यक्ति ! अब तुम ईश्वर का स्मरण करो, अपने कर्मों को स्मरण करो। अब यह शरीर भस्म होने वाला है।"[१] ऋग्वेद में वर्णित है कि अग्नि के द्वारा शव का दाह कर दिया जाता था जिससे कि मृतक शुद्ध व पवित्र होकर पुण्य पितृलोक मे प्रवेश प्राप्त कर सके।"[२] इसके अनुसार शव को घर से निकालकर गाँव के बाहर लाते थे।"[३] मृतक के साथ बाल बिखराये हुए रुदन करती हुई स्त्रियाँ जाती थीं तथा उसके दाह के पश्चात् अस्त-व्यस्त केशों वाली स्त्रियाँ दोनों हाथों से छाती पीट-पीट कर चिल्लाती हुई नृत्य करती थीं।"[४] हे मनुष्य ! तुम यमलोक को जाओ जहाँ पुण्यकर्ता लोग जाते हैं। मृतक का पैर सुतली से बांध दिया जाता था।"[५] इस प्रयोजन के लिए विनियोज्य मन्त्र में कहा गया है कि तुम्हारे जीवन के वहन के लिये मैं इन दो बैलों को जोतता हूँ।"[६]

१- वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम्।
ओम क्रतो स्मर कृतं स्मर ।। यजुर्वेद - ४०। १५

२- यदा श्रृतं कृणवो जातवेदोऽथेमेनं प्रहिणुतात् पितृभ्यः। ऋग्वेद-१०। १६। १

३- अपेम जीवा अरुधनृगृहेभ्यस्तं निर्वहत परिग्रामा दितः।। अथर्ववेद - १८। २। २७

४- क्षिप्रं वै तस्या दहनं परिनृत्यन्ति केशिनीराघ्नानाः।
पणिनीरसि कुर्वाणाः पाममैलबम् ।। अथर्ववेद - १२। ५। ४८

५- यां मृतायामनुबन्धन्ति कूद्यं पादयोपनीयम्। ५। १६। १२
मा त्वा त्यस्त केश्यो मा त्वाघरुदो रुदन्।। ८। १। १६

६- इमौ यूनिष्म ते बह्नि असुनीयताय बोढवे।
ताभ्यां यमस्य सादनं समितिश्चाव गच्छतात्।। १८। २। ५६

पत्नी का चिता पर लेटना – वैदिक काल में पत्नियाँ पति के साथ शव दाह कर लेती थीं। अथर्ववेद के एक मंत्र से ज्ञात होता है कि पत्नी अपने पति की चिता के बगल में लेट जाया करती थी।''[१] एक अन्य मंत्र से स्पष्ट होता है कि पत्नी का पति की चिता पर लेटना केवल परम्परा मात्र है। मैंने मृतक के लिये जीवित लेटी हुई पत्नी को देखा, मानों वह गहरे अंधकार में आवृत्त थी। तब मैंने उसे बाहर निकाला।''[२] कुछ मंत्र ऐसे भी मिले हैं जिनसे ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ पति के मरने के बाद देवर इत्यादि से दूसरा विवाह कर लेती थीं। दूसरा पति चुनने का अन्यत्र भी उल्लेख है।''[३] एक मंत्र से स्पष्ट होता है कि वह (पत्नी) अपने प्रियजनों द्वारा चिता पर से पुनर्विवाहित जीवन बिताने के लिये उठा ली जाती थी। ''हे नारी ! उठो, इस जीवलोक में आओ। तुम निष्प्राण व्यक्ति के साथ सोयी हो, इसे छोड़ दो। तुम्हारा हाथ पकड़ने वाला यह तुम्हारा पति है (दधिषुः)। तुम अब पति-पत्नी के सम्बन्ध से युक्त हो।''[४] अगले मंत्र में कहा गया है कि यह गोपति तुम्हारा है, इससे तुम प्रेम करो। इससे पता चलता है कि चिता पर लेटी पत्नी गोपति के घर की थी।''[५]

१- इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उत त्वा मर्त्यं प्रेतम्। अथर्ववेद - १८। ३। १
२- अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम्।
अन्धेन यत्तमसा प्रावृतासीत्प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम्।। अथर्ववेद १८३,३
३- या पूर्व पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दतेऽपरम्।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषत।। अथर्ववेद - ६। ५। २७
४- उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ।। अथर्ववेद - १८। ३। २
५- अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व । अथर्ववेद १८। ३। ४

मृतक को नहलाने के भी मंत्र कहे गये हैं। मृतक को नहलाकर वस्त्र पहनाया जाता था।"[१] चिता के पास बकरे की बलि भी दी जाती थी और अग्निदेव से प्रार्थना की जाती थी कि हे अग्नि ! यह बकरा तुम्हारी ज्वाला का भाग है, उसे तुम जलाओ... इस प्रकार इसे पुण्यलोक में ले जाओ।"[२] उसके हाथ में आने वाले संकटों से बचने के लिए दण्ड और धनुष भी दिया जाता था परन्तु पुनः उसे ले लिया जाता था।"[३]

दाह क्रिया – इन सभी क्रियाओं के बाद दाह क्रिया प्रारम्भ होती थी। जिसे आह्वनीय अग्नि में दी जाने वाली आहुति माना जाता है। जिस प्रकार यज्ञ की आहुतियां स्वर्ग पहुँचती हैं, उसी प्रकार ये अग्नि भी स्वर्ग पहुँचती हैं। अथर्ववेद में प्रार्थना की गयी है कि हे अग्नि ! इस मृतक को आगे-पीछे सब ओर से सम्यग रूप से जलाकर अच्छे लोक में ले जाओ।"[४]

१- एतत्त्वा वासः प्रथमं न्वागन् । अथर्ववेद - १८। २। ५७
२- अजो भागस्तपसस्तं तपस्व तं ते... ताभिर्वहैनं सुकृतामुलोकम्। अथर्ववेद - १८। २। ८
३- दण्डं हस्तादाददानो। अथर्ववेद - १८ । २। ५६
धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य। अथर्ववेद १८। २। ६०
४- शमग्ने पश्चात्तप शं पुरस्ताच्छमुन्तराच्छमघरात्तपैनम्। एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः
सम्यगेनं धेहि सुकृतामु लोके। अथर्ववेद - १८। ४। ११

मृत शरीर के प्रत्येक अङ्ग को जलाकर चिता की अग्नियाँ उसे पवित्र कर देती थीं, जिससे उस शरीर का प्रत्येक अवयव जहाँ तहाँ मिल जाये। मृतक की आँखें सूर्य में मिल जाती थीं तथा आत्मा वायु में, अच्छे कर्मों से वह पृथिवी लोक और स्वर्गलोक दोनों में व्याप्त हो जाता था। यदि तुम्हारे शरीर का कल्याण हो, तो वह औषधियों में या पवित्र जल में जाए।''[१] यहाँ पर आत्मा को वायु से समीकृत किया गया है। अन्य स्थानों पर भी वायु को प्राण कहा गया है।''[२] इस प्रकार मृतक के सभी अंग जलकर भस्मीभूत होकर पञ्चतत्त्व में विलीन हो जाते थे। इसके पश्चात् शमशान भूमि पर उपस्थित लोगों के कुशल क्षेम की कामना की जाती थी। यह प्रार्थना की जाती थी कि प्रेत कुल की नारियाँ वैधव्य रहित हों तथा सर्पिष् और अंजन से युक्त रहें, अश्रु रहित, रोग रहित और आभूषणों से युक्त हों तथा अच्छी सन्तानों को देने वाली हों।''[३] मृतक को अन्तिम विदाई दी जाती थी। (इष्टापूर्त) से संवलित हो, पितरों के साथ स्वर्गलोक में जाओ।''[४] स्वर्गलोक के शासक से प्रार्थना की जाती थी कि जो हमारे पिता और पितामह पितरों के रूप में स्वर्गवासी हैं, स्वराट् उनके शरीर को उचित स्वरूप प्रदान करें।''[५]

१- सूर्य चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः।। अथर्ववेद - १८। २। ७

२- वायु प्राणेभूत्वा नासिके प्राविशत् । ए० आ० २। ४२

३- इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्चनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम्।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ।। अथर्ववेद - १८। ३। ५७

४- सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टा पूर्तेन परमे व्योमन्। अथर्ववेद - १८। ३। ५८

५- ये नः पितुः पितरो... तेभ्यः स्वाराडसुनीतिर्नो अद्य यथा वशं तन्वः कल्पयाति।
अथर्ववेद - १८। ३। ५६

विवाह

वैदिक-संहिता काल में विवाह को एक पवित्र संस्कार माना जाता था। विवाह सूक्त में कहा गया है कि विवाह कन्या के घर पर ही किया जाता था, जहाँ से कन्या रथ पर चढ़कर वर के गृह जाती थी।"[1] ऋग्वेद-संहिता में स्पष्ट कहा गया है कि विवाह-संस्कार सत्य और कर्त्तव्य पर प्रतिष्ठित था। "[2] एक स्थान पर पुनः वधू रूप सूर्या का सुनहले और चित्र-विचित्र कपड़ों से आवृत एवं अच्छे पहिये वाले रथ में बैठ कर पति के घर जाने का उल्लेख है।"[3] स्मृतियों में विवाह के आठ भेद बताये गये हैं। मनु के अनुसार - ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और आठवां बहुत तुच्छ पैशाच। इसमें पैशाच विवाह को सबसे निम्न कोटि का बताया गया है।"[4] बौधायन ने आठ प्रकार के विवाहों का वर्णन किया है-ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्र्धव, राक्षस, और पैशाच।"[5] वशिष्ठ के अनुसार ६ प्रकार के विवाह बताए गये हैं - ब्राह्म, दैव, आर्ष, गान्धर्व, क्षात्र और मानुष।"[6] विवाह सभी संस्कारों में गौरवशाली माना गया है, जिसमें व्यक्ति की नयी सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति प्रारम्भ होती है।

१- सूर्याया वहतुः प्रागात्। अथर्ववेद- १४। १
त्रिचक्रेण वहतुं सूर्याया। अथर्ववेद -१४। १। १३। १४

२- ऋृतस्य योनौ सुकृतस्य लोके । ऋग्वेद - १०। ८५। २४

३- सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्।
आरोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणु त्वम्। अथर्ववेद-१४। १। ६१

४- ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः।। मनुस्मृति - ३। २१

५- ब्राह्मदेवार्ष-प्राजापत्य-गन्धर्वाऽऽसुर-पैशाच-राक्षसाः। बुध०

६- षड् विवाहाः। ब्राह्मो दैव आर्षो गान्धर्वः क्षात्रो मानुषश्चेति। वशिष्ठ १। २८। २६

विसर्जन की अन्य विधियाँ

अथर्ववेद के एक मंत्र से शव को दग्ध करने के अतिरिक्त अन्य तीन विधियों का विवरण मिलता है। इसके अनुसार मृतक को समाधिस्थ (निखात) किया जाता था। दूसरी विधि के अनुसार मृतक का परित्याग कर दिया जाता था। तीसरी विधि में मृतक को खुले मैदान या वृक्षों में रख दिया जाता था। जब उसके मांस को पशु पक्षी आदि जीव खा लेते थे तो उसकी हड्डियों को समाधिस्थ किया जाता था। जो समाधिस्थ है, जो दग्ध है और जिन्हें खुले स्थान में छोड़ दिया गया (उद्धिता) हे अग्नि ! उन सभी पितरों को हविष् खाने के लिए बुलाओ।"[१] उस काल में ये विधियाँ श्लाघनीय थीं। चाहे दग्ध पितर हों या अन्य विधियों वाले अदग्ध पितर हों, सभी स्वर्ग में स्वधा के द्वारा प्रसन्न हुए समझे जाते है।"[२] दग्ध और अदग्ध विधियों में कौन विधि सर्वाधिक प्राचीन है यह कहना कठिन है।

व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसे घर से निकाला जाता था।"[३] मृतक को ले जाने वाले शव का वर्णन नहीं मिलता है। शायद यह बैलगाड़ी पर रख कर ले जाया जाता था। एक मंत्र में शव को गाड़ी पर रखने का संकेत मिलता है।"[४] मृतकों की समाधियाँ गाँव के समीप ही कहीं बनाई जाती थीं, क्योंकि मंत्र में परिग्रामादितः वाक्य इसी ओर संकेत करता है।"[५]

१- ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिता।
सर्वास्तानग्न आ वह पितृन्हविषे अन्तवे। अथर्ववेद - १८। २। ३४

२- ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवे स्वधया मादयन्ते। अथर्ववेद -१८। २। ३५

३- अपेमं जीवा अरुधन्गृहेभ्यस्तं निर्वहत परिग्रामा दितः । अथर्ववेद - १८।२। २६

४- इमौ युनिज्म ते बह्नी असुनीताय वोढवे। अथर्ववेद - १८। २। ५६

५- अपेमं जीवा अरुधन्गृहेभ्यस्तं निर्वहत परिग्रामादितः। अथर्ववेद - १८। २। २६

समाधि बनाने के कुछ नियम भी थे। गड्ढे की भी चौड़ाई लम्बाई और गहराई के सम्बन्ध में कुछ विवरण मिलता है। एक मंत्र से पता चलता है कि समाधि की लम्बाई चार पग की, चौड़ाई तीन पग और गहराई नाभि तक होती थी, जिसमें शव भली भाँति रखा जा सके।"[१] एक अन्य सूक्त के कतिपय मंत्रो में 'इमां मात्रां' स्पष्ट रूप से समाधि के परिमाण का सूचक है। समाधि को चारों तरफ इतना सुदृढ़ बनाया जाता था कि सौ वर्ष तक स्थिर रहे।"[२] शव को संरक्षण के लिए पृथिवी से प्रार्थना की जाती थीं 'पृथ्वी इसके लिये तुम प्रसन्न हो, तुम मृतक का नाश न करने वाली और निवास देने वाली हो इसके लिये शरण दो।"[३] इन्द्रजाल का प्रयोग शमशान पर भी किया जाता था।"[४] मृतक के शरीर को समाधि में रख देने पर उसके साथ उसकी पत्नी भी लेटती थी"[५] जिससे दस्यु लोग समाधि मे प्रविष्ट न हों। ये दस्यु लोग सम्बंधियों की भाँति पितरों में मिल जाते हैं।"[६]

१- त्रीणि पदानि रूपो अन्तरोहच्चतुष्पदीमन्वैतद्व्रतेन अक्षरेण प्रति मिमीते
अर्कमृतस्य नाभवभि सं पुनाति। अथर्ववेद - १८। ३। ४०

२- समिमां मात्रा मिमीमहे यथापरं न मासातै।
शते शरव्सु नो पुरां । अथर्ववेद - १८। २। ४४

३- स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी।
यच्छास्मै शर्म सप्रथा।। अथर्ववेद - १८। २। १९

४- यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचरतु। अथर्ववेद- ५। ३१। ८

५- इयं नारी पतिलोक वृणाना नि पद्यत उपत्वा मर्त्य प्रेतम् । धर्म
पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्राजांद्रविणं चेह धेहि। अथर्ववेद १८। ३। १

६- ये दस्यवः पितृषु प्रविष्ठा ज्ञातिमुखा अहुता दश्चरन्ति।
पुरापुरो निपुरो य भरन्त्यग्निष्टानस्मात्प्र प्रधमाति यज्ञात्।। अथर्ववेद १८। २।२८

कभी-कभी स्त्रियाँ स्वेच्छा से पति के साथ समाधिस्थ हो जाती थीं।''[1] समाधि के साथ कुछ खाद्य पदार्थ रख दिया जाता था। तत्पश्चात् समाधि को पाट दिया जाता था। प्रार्थना की जाती थी 'हे पृथिवी' तू इसे उसी प्रकार ढक लो जैसे माता पुत्र को।[2] तथा स्त्री अपने वस्त्र से अपने पति को।''[3] माता पृथिवी के वस्त्र से तुम्हें आच्छादित करता हूँ, जीवों में जो कल्याणकारी हो वह मुझमें आये और पितरों की स्वधा तुम्हें मिले।''[4] इसके बाद समाधि को पाटा जाता था। इसके प्रतीक के रूप में स्तम्भ को खड़ा कर दिया जाता था।''[5] कुछ मंत्रों के अनुसार शव को खुले में छोड़ दिया जाता था या पेड़ों में खोखरो मे रख दिया जाता था। जिससे उसके मांस को कौवे, चीटियाँ सर्प या कुत्ते आदि खा लेते थे।''[6] उसके पश्चात् पेड़ों के खोखरों से हड्डियों का चयन किया जाता था।''[7]

१- हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेद पत्युर्जनित्वममि सं वभूथ। अथर्ववेद-१८। ३। २

२- माता पुत्रं यथा सिचाभ्येन भूम उर्णुहि। अथर्ववेद- १८। २। ५०

३- जायां पतिमिव वाससाभ्येनं भूम उर्णुहि। अथर्ववेद- १८। २। ५१

४- अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया।
जीवेषु भद्रं तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि।। १८। २। ५२

५- उत्ते स्तम्नामि पृथिवीं त्वत्परीमं लोगं निदधन्मो अहंरिषम्।
एता स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु।। अथर्ववेद- १८। ३। ५२

६- यन्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्व उत वा श्वापदः। अथर्ववेद- १८। ३। ५५

७- पुनर्देहि वनस्पते य एष निहस्त्वयि। अथर्ववेद- १८। ३। ७०

अस्थि के संकलित करने में सावधानी बरती जाती थी।"[१] इस प्रकार अस्थियों को इकट्ठा करके उसे एक मानव आकृति बनाया जाता था।"[२] फिर अस्थि पञ्जर को सैकड़ों छेद वाले घड़े में रखा जाता था।"[३] इस प्रकार शरीर का वेदोक्त संस्कार करना चाहिए। क्योंकि यह संस्कार इह लोक एवं पर लोक दोनों फलदायी (शुभ) है।"[४] मिताक्षरा के अनुसार नारी के लिये इन संस्कारों की इसलिये भी विशेष आवश्यकता है क्योंकि नारी उस खान के समान है, जो एक बार संस्कारवती हो जाने पर अपनी सन्तति को संस्कार युक्त बनाने की क्षमता रखती है।"[५]

१- प्रच्यवस्व तन्व सं भरस्व मा ते गात्रा विहायि मो शरीम्। अथर्ववेद - १८। ३। ६

२- यथापरु तन्वं सं भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि। अथर्ववेद - १८। ४। ५२

३- सहस्त्रधारं मुक्षितम्। अथर्ववेद - १८। ४। ३६

४- वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिद्विजन्मनाम्।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेहच।। (मनु० अध्याय-२)

५- सकृच्च संस्कृता नारी सर्वगर्भेषु संस्कृता।
यं यं गर्भं प्रसूयेत स सर्वः संस्कृतो भवेत्।। (मिताक्षरा-१.११)

चतुर्थ अध्याय

वैदिक नारी की राजनैतिक महत्ता

वेद मुख्यतया धार्मिक ग्रन्थ है। राजनीतिक इतिहास में इनका विशेष महत्त्व नहीं है। फिर भी ऋग्वेद में स्थान-स्थान पर राजा तथा राज्य आदि पद पर बार-बार उल्लिखित किये गये हैं। वैदिक युग के राजा के कर्तव्यों व आदर्शों को वरुण सूक्तों से भली-भांति समझा जा सकता है। वरुण को राजा शब्द से सम्बोधित किया गया है।''[१] ऋग्वेद और अथर्ववेद में राजा के निर्वाचन का भी उल्लेख आता है।''[२] वैदिक काल में प्रजा के प्रतिनिधियों की एक समिति रहती थी। जिसके द्वारा राजा का निर्वाचन होता था।[३] मनु का कथन है कि राजा आठ लोकपालों का शरीर धारण करता है, अतः राजा लोकपालों से अधिष्ठित है। ''अष्टानां लोक पालानां, वधुर्धारयते नृपः। (५.९६) मनु का भी कथन है कि राजा से हीन राष्ट्र में सभी जगह अराजकता का राज्य रहता है, अतः संसार की रक्षा के लिए परमात्मा ने राजा की सृष्टि की (रक्षार्थमस्य सर्वस्य, राजानमसृजत प्रभुः मनु- ६.३)।

१- उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित।। ऋग्वेद-१/२४/८

२- शुनः शेपो ह्यह्वद्गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषुबद्धः।
अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद्विदाम् अदब्धोविमुमोक्तु पाशान्।। ऋग्वेद - १/२४/१३

३- ऋग्वेद - ९/९२/६ ; अथर्ववेद - ५/१९/५; ६/८८/३

वैदिक युग के राजनैतिक जीवन में सभा व समिति का महत्त्वपूर्ण स्थान था। इनका उल्लेख वैदिक साहित्य में अनेकत्र आता है।[१] अर्थववेद में भी ये उल्लिखित हैं।''[२] उसमें लिखा है कि सभा व समिति प्रजापति की दो विदुषी पुत्रियाँ हैं। जिनमें अच्छे-अच्छे सदस्य एकत्र होकर उत्तम प्रकार से बोलने की चेष्टा करते हैं। समिति में अच्छे-अच्छे भाषण दिये जाते थे तथा प्रत्येक सदस्य की यह महत्त्वाकांक्षा रहती थी कि वह अच्छा वक्ता बनें।''[३] संहिता काल में नारी-समाज की अच्छी भूमिका थी। यह सभी क्षेत्रों (रणस्थल, न्याय) में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेती थीं। यह देश, जाति एवं धर्म की रक्षा के लिए प्राणों की बलि तक दे देती थीं। नारी समाज में अपने राज्य, देश की रक्षा के प्रति बड़े ही उदार एवं शक्तिसम्पन्न भाव थे। वे इसका निर्वाह बड़ी ही उत्सुकता से करती थीं।

१- परि सद्मेव पशुमान्ति होता राजा न सत्यः समितीरियानः।
सोमः पुनानः कलशाँ अयासीत्सीदन्मृगो न महिषो वनेषु।। ऋग्वेद - ९/१९२/६

२- अथर्ववेद - ६/८८/३; ६/६४/२; ५/१६/१५;

३- सभा च सा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने । येना संगच्छ उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः सङ्गतेषु विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि। ये ते के च सभा सदस्ते मे सन्तु सवाचसः।।'' अथर्ववेद - ७/१२/१,२

युद्ध में सहभागिता

स्त्रियां पति के साथ युद्ध में भी जाया करती थीं और उनके रथ का संचालन करती थीं। 'रवेल' नृप की रानी विश्पला पति के साथ युद्ध में गई थी और उसका पैर युद्ध में कट गया था। अश्विनी कुमारों की कृपा से उसने लोहे के पैर लगवा लिये थे। वृत्रासुर के साथ उसकी माता हनु भी युद्ध में इन्द्र के द्वारा मारी गयी थी। नमुचि के पास तो स्त्रियों की एक पूरी सेना ही थी। मुद्गल-पत्नी इन्द्रसेना ने रक्ष-संचालन और अस्त्र-संचालन करके वीरतापूर्वक इन्द्र के शत्रुओं का नाश किया था। उसने शत्रुओं के छक्के छुड़ाकर उनसे अपृहत गौएं छुड़ा ली थी।''[१] ऋग्वेद में एक स्थान पर एक स्त्री कहती है कि शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाली मैंने अपनी इन सौतों को जीत लिया है, जिससे मैं इस वीर (पति) की और इसके परिवार की स्वामिनी होऊँ।''[२]

१- ऋग्वेद - १०/१०/२२-११

२- स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नवाला अस्य सेनाः।
अन्तर्ह्यरव्यदुभे अस्य धेने अथापि प्रद्युधये दस्यु मिन्दुः।। ऋग्वेद-५/३०/६

३- समजैषमिमा अहं सपत्नीरमिभूवरी।
यथाहमस्य वीरस्य विराजानि जनस्य च।। ऋग्वेद - १०,१५६,६

ऋग्वेद में नारी को शत्रुविजयिनी कहा गया है। स्त्री कहती है कि मैं शत्रुरहित हूं, शत्रुओं को नष्ट करने वाली हूं, विजयिनी हूं और शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाली हूं। मैंने अन्य स्त्रियों (सपत्नियों) का तेज इसी प्रकार नष्ट कर दिया है, जैसे अस्थिर चित्त वालों का धन नष्ट हो जाता है"[१] अथर्ववेद में इन्द्राणी सेनानायक का वर्णन है कि जिस प्रकार इन्द्र या राजा सेना के नायक होते हैं, उसी प्रकार इन्द्राणी भी सेना की नायक है। इस मंत्र में बतलाया गया है कि हे दोनों पैर! तुम आगे बढ़ो, शीघ्रता करो। दाता के घर ले चलों। अपराजित, न लूटी गई तथा अग्रणी इन्द्राणी सबसे आगे चलो।"[२] अथर्ववेद में ही नारी को शत्रु की सेना को पराजित करने वाली कहा गया है। इन्द्राणी रानी क्षत्रियाणी की प्रतीक है "इन्द्राणी शिव के पिनाक (धनुष) की तरह धनुष को धारण करती हुई और शत्रु सेना को काटती हुई विभिन्न दिशाओं में आगे बढ़ें। पुनः एकत्र हुई शत्रु सेना का मन इधर-उधर जावे। पापी शत्रु ऐश्वर्य-रहित हों।"[३]

१- असपत्ना सपत्नघ्नी, जयन्त्यभिभूवरी।
आवृक्षमन्यासां वर्चो, राधो अस्थेयसामिव।। ऋग्वेद - १०/१५९/५।

२- प्रेतं पादौ प्रस्फुरतं वहतं पृणतो गृहान।
इन्द्राण्येतु प्रथमाऽजीताऽमुषिता पुरः।। अथर्ववेद - १/२७/४।

३- विषूज्येतु कृन्तती, पिनाकमिव बिभ्रती।
विष्वक् पुनर्भूवा मनोऽसमृद्धा अघायवः।। अथर्ववेद - १/२७/२।

तैत्तिरीय संहिता में इन्द्राणी को सेना का देवता कहा गया है। उसके साथ यह भी कहा गया है कि जिसकी सेना निर्बल या निस्तेज हो, वह इन्द्राणी के निमित्त यज्ञ में आहुति दे। इससे उसकी सेना सबल और तीक्ष्ण होगी। वह सेना में तेजस्विता लाती है।''[१] ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा निरुक्त में स्त्री को अबला नहीं प्रत्युत सबला कहा गया है कि नीच, पापी, दुराचारी व्यक्ति मुझे निर्बल समझकर आतंकित करना चाहता है। इसका उत्तर है कि स्त्री वीर है, वीरांगना है, वीर की पत्नी और वीरतापूर्वक कार्य करने वाली है।''[२] स्त्री के लिये एक महत्त्वपूर्ण विशेषण दिया गया ''सहस्रवीर्या'' अर्थात् वह आवश्यकतानुसार सहस्रों प्रकार के पराक्रम दिखा सकती है। इसका तात्पर्य यह है कि स्त्री में असाधारण आत्मिक शक्ति होती है। ऐसी स्त्री के लिए कहा गया है कि वह मुझे शक्ति प्रदान करे पराक्रमी और पुरुषार्थी स्त्री ही दूसरों में पराक्रम की भावना उत्पन्न कर सकती है।''[३]

१– इन्द्राणी वै सेनायै देवता।
सैवास्य सेनां सं श्यति। तैत्तिरीय संहिता – २.२.८.१

२– अवीरामिव मामयं, शरारुरभि मन्यते।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मामिन्द्र उत्तरः।।
ऋग्वेद – १०,८६.६; अथर्ववेद – २०,२६,६; निरुक्त ६.३१

३– अषाढसि सहमाना सहस्वारातीः सहस्व पृतनायतः।
सहस्रवीर्यासि सा मा जिन्व।। यजुर्वेद – १३.२६

स्मृतियों में स्त्रियों के शासन-प्रबन्ध में भाग लेने का विस्तृत वर्णन नहीं मिलता। यत्र-तत्र उपलब्ध विवरण से पता चलता है कि स्त्रियों को राजकार्य में लगाया जाता था। इस विषय में मनु का कथन है कि राजकार्य में जिन स्त्रियों और दास व दासियों को काम पर लगाया जाता है, उनका उनको कार्य के अनुरूप प्रतिदिन का वेतन निर्धारित किया जाए। वे क्या कार्य करेंगे यह भी उन्हें बताया जाए।"[१] समाज में नारी की प्रतिष्ठा उसके गृहस्वामिनी के रूप में ही बतायी गयी है, परन्तु नारी ने अपने बल एवं पौरुष से राष्ट्र के हित चिंतन में समुचित योगदान दिया। ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि, तुम विदथ में अधिकार सम्पन्न वक्ता होगी।"[२] यह वर्णन विवाह के अवसर पर वधू को सम्बोधन करते हुए वर से सम्बद्ध है। इसके विपरीत मैत्रायणी संहिता में सभा में स्त्रियों के सम्मिलित होने का निषेध पाया जाता है इसलिए सभा में पुरुष ही जाते थे।"[३]

१- राजा कर्मसु युक्तानां, स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च।
प्रत्यहं कल्पयेद् वृत्तिं, स्थानं कर्मानुरूपतः।। मनु० - ७.१२५

२- वशिनी त्वं विदथमावदासि। ऋग्वेद - १०/८५/२६।

३- तस्मात् पुमांसः सभां यान्ति न स्त्रियः। मैत्रायणी संहिता - ४.७.१

महिषी

शतपथ के अतिरिक्त अन्य सभी ग्रंथों में महिषी का नाम तीसरा है महिषी शब्द का तात्पर्य राजा की प्रधान रानी से है, राजाओं की बहुपत्नीकता की पुष्टि करता है। इससे यह भी प्रकट है कि वैदिक काल में रानी की हैसियत राजा की पत्नी की ही नहीं थी, बल्कि शासन-व्यवस्था में भी उसका महत्त्वपूर्ण स्थान था।

महिषी के इस महत्त्व का कारण राजा द्वारा धार्मिक अनुष्ठानों के सम्पादन में पत्नी के सहयोग की आवश्यकताओं को मानते हैं। शत० ब्राह्मण के अनुसार ही अपत्नीक व्यक्ति कर्म का अधिकारी नहीं होता है।"[१] ऐसी स्थिति में राजसूय के अवसर पर पत्नी की उपस्थिति निश्चय ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही होगी किन्तु रत्नी-सूची में महिषी की महत्त्वपूर्ण स्थिति उसके शासन-सम्बन्धी उत्तरदायित्वों की ओर भी संकेत करती है, क्योंकि रत्नी-सूची के सभी सदस्य प्रायः राजनैतिक एवं प्रशासकीय महत्त्व के व्यक्ति हैं। महिषी

१- शतपथ ब्राह्मण - ५-१-६१०

के यहां माता की तरह भरण-पोषण करने वाली अदिति को हानि प्रदान की जाती थी।"[1] जिससे ज्ञात होता है कि महिषी साधारणतया राजमाता थी जो पारिवारिक जीवन में राजा की होती थी, बल्कि राष्ट्रीय जीवन में राजा के साथ प्रजा-पालन के महान् कार्य में सहयोग करती थी। महिषी के अतिरिक्त रत्नी सूची में वावाता और परिवृत्ति का भी उल्लेख है। यह उत्तर वैदिक राजनैतिक जीवन में मातृसत्तात्मक परम्पराओं के अवशिष्ट प्रभाव का संकेत करता है। वावाता का उल्लेख केवल तैत्तिरीय-ब्राह्मण में हुआ है। किन्तु परिवृत्ति का नाम शतपथ ब्राह्मण को छोड़कर शेष चारों ग्रथों में हुआ है।"[2] तीन ग्रंथ परिवृत्ति को चौथा स्थान देते हैं। केवल तैत्तिरीय-ब्राह्मम में वावाता के समावेश होने के कारण उसे पांचवा स्थान मिलता है। राजा की इन दोनों रानियों (पत्नियों) के राजनैतिक महत्त्व का कारण प्रायः अज्ञात है। सम्भव है कि इन राज पत्नियों को सम्मानित करने के लिए तथा इन्हें विरोध का अवसर न प्रदान करने के लिए ही इन्हें रत्नी वर्ग का सदस्य माना गया हो। कुछ भी हो महिषी वावात और परिवृत्ति का रत्नी वर्ग का

१- शतपथ ब्राह्मण - ५.३.१.४
२- शतपथ ब्राह्मण - ५.३.१.४

सदस्य होना इस बात का प्रबल प्रमाण है कि वैदिक समाज में स्त्रियों की दशा इतनी उच्च थी कि वे राजनैतिक कार्यों में भी सहयोग करती थीं। सम्भव है कि सामान्य स्त्रियां राजनैतिक जीवन से अलग रही हों जैसा कि मै त्रायणी संहिता में स्त्रियों के सभा-गमन के विरोध से पता चलता है।"[1]

स्वराज की भावना

ऋक् संहिता के प्रथम-मण्डल का ८० वाँ सूक्त स्वराज्य-सूक्त के नाम से जाना जाता है। इस मंत्र में सबको शत्रु का दमन कर स्वराज का भक्त बनने का आदेश दिया गया है।"[2] अथर्व संहिता में कहा गया है कि 'संगठित रूप में पुरुषार्थ करने वाला जन-समुदाय ही स्वराज प्राप्ति का अधिकारी है। स्वराज-प्राप्ति के लिये इससे बढ़कर कोई अन्य उपाय नहीं है।"[3] ऋक् सहिंता के प्रथम-मण्डल के ६० वें सूक्त में मित्र, वरुण, अर्थमा, इन्द्र, बृहस्पति और विष्णु से रक्षा करने की प्रार्थना की गयी है।"[4]

१- मैत्रायणी संहिता - ४.७.४

२- इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम्।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्यानिः शशाअहिमर्चन्ननु स्वराजम। ऋग्वेद - १/८०/१

३- यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय।
यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम्।। अथर्ववेद - १० ।७ ।३१

४- शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्य्यमा।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः।। ऋग्वेद - १-६० ।६

न्यायकर्त्री के रूप में

ऋक् संहिता में नारी द्वारा किये गये न्याय से राजप्रबन्ध की सुस्थिरता का पता चलता है।"[1] यजुः संहिता के दशम अध्याय के प्रथम चार मंत्रों में राज्याभिषेक, पाँचवे मंत्र में सिंहासनारोहण तथा राजा की तेजस्विता का वर्णन है। २६वें और २७ वें मंत्रो की देवता (आसन्दी) "राजपत्नी" है। इन मंत्रो के मनन से पता चलता है कि उस समय राजाओं की पत्नियाँ दूसरों को न्याय एवं राजनीति की शिक्षा देती थीं और राजा की तरह ही स्त्री-समाज की समस्याओं पर विचार करती थीं।"[2] यजुः संहिता के द्वादश आध्याय के ६५वें मंत्र में सत्य का आचरण करने वाली निर्ऋर्मृति से प्रार्थना की गयी है कि वह न्यायाधीश बनकर उचित निर्णय के द्वारा दण्डनीय व्यक्ति को दण्ड देकर निरपराधियों को बन्धनशालिनी नारी को अभिनन्दनीय एवं वन्दनीय कहा गया है। यजुः संहिता में नारी को "घोरा" कह कर उसमें न्याय द्वारा दुष्टों का संहार के सामर्थ्य का वर्णन किया गया है।"[3]

१- अत्राह ते हरिवस्ता उ देवीरवोभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसार।
यत्सीमनु प्रमुचो बद्बधाना दीर्घामनु प्रसिति स्पन्दयध्यै।। ऋक्संहिता ४-२२-७

२- स्योना सि सुषदा सि क्षत्रस्य योनिरसि।
स्योनामासीद् सुषदामासीद् क्षत्रस्य योनिमासीद्।।
निषसाद घृतव्रती वरुणः पस्त्यास्वा साम्राज्याय सुक्रतुः।। यजु संहिता - १०-२६-२७

३- यस्यास्ते घोरासन जुहोम्येषां बन्धानामव सर्जनाय।
जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋृति त्वाहं परिवेदविश्वतः।। यजु संहिता - १२-६४

पञ्चम अध्याय

वैदिक नारी का धार्मिक जीवन

ऋग्वेद काल से ही मनुष्यों का जीवन धर्म से प्रभावित रहा है। छान्दोग्य उपनिषद् में धर्म के तीन स्कन्धों की चर्चा हुई है, जो सम्भवतः प्राचीन भारतीय धार्मिक जीवन के आधार-स्तम्भ थे। उसमें कहा गया है कि धर्म के तीन स्कन्ध (स्तम्भ) हैं- पहला स्कन्ध जिसमें यज्ञ, अध्ययन और दान हैं, दूसरा स्कन्ध तप है जिसके अन्तर्गत कष्ट और सहिष्णुता आती है तथा तीसरा स्कन्ध ब्रह्मचारी आचार्य का कुल है, जहां निवास करने वाला ब्रह्मचारी ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने में अपने को क्षीण कर देता है। इस तरह के लोग पुण्यलोक को प्राप्त होते हैं।"[१] मनु के अनुसार दस गुणों को धर्म के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है। ये हैं- धैर्य, क्षमा, मन को वश में रखना, अस्तेय (चोरी न करना), शौच (मानसिक, वाचिक, शारीरिक शुद्धि), इन्द्रिय-संयम, ज्ञान, विद्या, सत्य और क्रोध का त्याग।"[२] बृहस्पति ने सत्य, ज्ञान, तप और दान को धर्म माना है। धर्म से सुख और ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञान से मोक्ष मिलता है।"[३]

१- त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः।
तप एव द्वितीयः ब्रह्मचार्याकुलवासी,
तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन्।
सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति।। छान्दोग्य उपनिषद - २.२३.१

२- धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। मनुस्मृति - ६.९१

३- सत्यं ज्ञानं तपो दातमेतद्धर्मस्य साधनम्।
धर्मात् सुखं च ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षोऽधिगम्यते।। बृहस्पति संस्कारखण्ड- १.३

वशिष्ठ ने वेद और स्मृति में कहे गये कर्मों को धर्म कहा है। इनके अभाव में शिष्टाचार को प्रमाण माना है। मनु ने सदाचार को धर्म का सार माना है, अतएव कहा है कि द्विज सदा सदाचार का पालन करें। सदाचारी को ही वेद का फल मिलता है, सदाचार से हीन को नहीं। सदाचार ही सम्पूर्ण तपस्याओं का मूल है।"[१] याज्ञवल्क्य का कथन है कि वेद और धर्मशास्त्रों को जानने वाले चार विद्वान या तीन वेदों को जानने वालों की सभा या एक भी ब्रह्मवेत्ता जिसको धर्म बताये वह धर्म है।"[२]

उचित संकल्प से उत्पन्न अभिकांक्षा या इच्छा ये पाँच धर्म के उपादान हैं।"[३] याज्ञवल्क्य ने श्रद्धा पूर्वक उचित देश और काल में योग्य पात्र को दान देना भी धर्म का लक्षण माना है।"[४] याज्ञवल्क्य ने धर्म का परम लक्ष्य योग के द्वारा आत्मसाक्षात्कार माना है और यज्ञ, सदाचार, दम, अहिंसा, दान और स्वाध्याय को इनका साधन बताया है।"[५] बृहस्पति के अनुसार सतयुग में तप ही धर्म था, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में दान, दया तथा दम ही धर्म है।"[६]

१- आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च । मनुस्मृति -१.१०८

२- चत्वारो वेदधर्मज्ञाः, पर्षत् त्रिविद्यमेव वा।
सा ब्रूते यं स धर्मः स्यादेको वाऽध्यात्मवित्तमः ।। याज्ञ०- १.९

३- श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
सम्यक् संकल्पजः कामो, धर्ममूलमिदं स्मृतम्।। याज्ञवल्क्य- १.७

४- देशे काल उपायेन, द्रव्यं श्रद्धा-समन्वितम्।
पात्रे प्रदीयते यत् तत्, सकलं धर्मलक्षणम्।। याज्ञ०- १.६

५- इज्याचारदमाहिंसा-दान-स्वाध्याय-कर्मणाम्।
अयं तु परमो धर्मो, यद्योगेनात्मदर्शनम्।। याज्ञ० १.८

६- बृहस्पति० संस्कार काण्ड - १.४

जो धर्म की रक्षा नहीं करता है, धर्म उसका पूरी तरह नाश कर देता है। इसलिए धर्म का नाश कभी नहीं करें ताकि सुरक्षित धर्म हमारी रक्षा कर सके।"[१] भगवान धर्म को वृष - रूप कहते हैं। जो मनुष्य उसका नाश करता है उसे देवतागण 'वृषल' अर्थात् धर्म को काटने वाला या शूद्र कहते हैं। अतएव धर्म का नाश नहीं करें।"[२]

याज्ञवल्क्य ने सर्वसाधारण के लिए धर्म के साधन ये गुण बताए हैं- अहिंसा, सत्य बोलना, चोरी न करना, पवित्र रहना, इन्द्रिय संयम, दान देना, दया करना, मन का संयम और क्षमा करना।"[३]

एक मात्र धर्म ही ऐसा मित्र है जो मरने के बाद भी साथ चलता है। अन्यथा शरीर का नाश हो जाने के बाद सब कुछ इसी लोक में नष्ट हो जाता है।"[४] धर्म के बारे में कहा गया है कि जिस प्रकार दीमक बल्मीक बनाता है उसी प्रकार धीरे-धीरे धर्म का संग्रह करना चाहिए।"[५] ब्राह्मण धर्म के अन्तर्गत तपश्चर्या और ब्रह्मचर्य का प्रधान स्थान था। हिन्दू धर्म की समस्त व्यवस्थाओं में ब्राह्मणों का आधिपत्य और निर्देशन रहा है। ऐतरेय

१- धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नोधर्मोहतोऽवधीत्।। मनु० -८.१५

२- वृषोहि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्ययम्।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत्।। मनु०- ८.१६

३- अहिंसा सत्यमस्तेयं, शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
दानं दया दमः क्षान्तिः, सर्वेषां धर्मसाधनम्।। याज्ञ० - १.१२२

४- एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति।। मनु०- ८.१७

५- धर्मं शनैः संचिनुयाद्, बाल्मीकमिव पुत्तिकाः।
परलोकसहायार्थं, सर्वभूतान्यपीडयन्।। मनु०- ४.२३८

ब्राह्मण में धर्म के अन्तर्गत संन्यास और तपश्चर्या का जीवन श्रेयस्कर माना गया है, जिसमें सत्य का साक्षात् अनुभव होता था।

पञ्च महायज्ञ

वैदिक संहिताकालीन समाज में नर-नारी अपने श्रेय और प्रेय के लिये पंच महायज्ञों का सम्पादन करना अपना धर्म मानते थे। स्मृतियों में द्विज के लिये अनिवार्य कर्त्तव्य के रूप में पंच महायज्ञों का निर्देश किया गया है। पापों से मुक्त होने के लिए पांच महायज्ञ बताये गये हैं। इनके द्वारा द्विज अपने कर्त्तव्यों का पालन करता है और आत्मिक, दैविक, भौतिक आदि ऋणों से मुक्त होकर देवत्व की प्राप्ति करता है।"[१]

१- ब्रह्मयज्ञ

प्रतिदिन संध्याः स्वाध्याय, वेदों का अध्ययन ब्रह्मयज्ञ कहलाता है। वौधायन ने ओम्, तीन व्याहृतियां (भूर्भुवः स्वः) और गायत्री, इन तीन पाँच को मिलाकर ब्रह्मयज्ञ कहा है, अर्थात् "ओं भूर्भुवः स्वः" कह कर गायत्री का जप ही ब्रह्मयज्ञ है। यह गायत्री जप मनुष्य को सभी पापों से पवित्र करता है।"[२] बौधायन ने स्वाध्याय को ही सम्पूर्ण ब्रह्मयज्ञ बताया है। स्वाध्याय से मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है।"[३] आत्मराज्य की प्राप्ति हेतु ब्रह्मयज्ञ अनिवार्य माना जाता था।"[४]

१- तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्चक्लृप्ता महायज्ञा प्रत्यहं गृहमेधिनाम्।। मनुस्मृति - ३.६९

२- प्रणवो व्याहृतयः सावित्री चेत्येते पञ्च ब्रह्मयज्ञा अहरहर्ब्राह्मणं किल्बिषात पावयन्ति।। बौधा०-२.५.२२

३- अहरहः स्वाध्यायं कुर्यादा प्रणवात् तथैतं ब्रह्मयज्ञं समाप्नोति।
स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञः ....मृत्युं जयति बौधायन स्मृति- २,६,८-६

४- अथर्व०- १०/७/३१

२- देव यज्ञ

बौधायन और गौतम के अनुसार देवता का नाम लेकर "स्वाहा" शब्द के उच्चारण के साथ अग्नि में हवि या कम से कम एक समिधा डाल देना देवयज्ञ है।"[१] मनु ने होम को देवयज्ञ कहा है।"[२] लध्वाश्वलायन के अनुसार यदि ब्राह्मण दोनों समय यज्ञ न कर सके तो प्रातःकाल ही दोनों समय यज्ञ कर लेना चाहिए।"[३] वृहत्पराशर का कथन है कि यज्ञ, विवाह, उत्सव, युद्ध, बाढ़, भगदड़ और वन में स्पर्श-दोष नहीं माना जाता है।"[४] वृद्ध हारीत ने यज्ञ में डालने योग्य और न डालने योग्य वस्तुओं की लम्बी सूची दी है। डालने योग्य मुख्य वस्तुएँ हैं- घी, गुड़, शर्करा, मधु, दधि, खीर आदि। त्याज्य हैं- मद्य, मांस, अभक्ष्य वस्तुएँ, नमक, दुर्गन्धित और कीड़े के खाए काष्ठ आदि।"[५] अग्निहोत्र में यदि किसी विशिष्ट वस्तु का नाम नहीं लिया गया हो तो घृत की आहुति दी जाती है। यदि किसी देवता का नाम न लिया हो तो प्रजापति को देवता समझना चाहिए। तरल पदार्थ को स्रुवा से तथा शुष्क हवि दाहिने हाथ से देना चाहिए।"[६] मनु के अनुसार

१- अहरहः स्वाहा कुर्यादाकाष्ठात् तथैतं देवयज्ञं समाप्नोति। बौधायन०- २.६४, गौतम- ५,५

२- अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवे बलिर्भौतोनृयज्ञोऽतिथि पूजनम्। मनुस्मृति-३.७०

३- कालद्वये यदा होमं, द्विजः कर्तु न शक्यते।
सायमाज्याहुतिं चैव, जुहुयात् प्रातराहुतिम्।। ल० आश्व०- १.६५

४- विवाहोत्सवयज्ञेषु, संग्रामे जल-संप्लवे।
पलायने तथारण्ये, स्पर्शदोषो न विद्यते।। बृ० परा०- ८.३०६

५- वृ० हारीत०- ४.१११-११६; ८.११२-११८

६- द्रवं स्रुवेण होतव्यं, पाणिना कठिनं हविः। स्मृत्यर्थसार- पृ० ३५

यज्ञ के अनधिकारियों - पतित शूद्र आदि को- यज्ञ कराने से, श्रौत-स्मार्त कर्मों में नास्तिकता से और वेदमंत्रों का अभाव होने से अच्छे कुल भी शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।"[१] अग्निहोत्र द्वारा देवों को प्रसन्न करने का स्पष्ट उल्लेख है।"[२]

३- पितृयज्ञ

पितृयज्ञ को तीन प्रकार से किया जाता था।

१. तर्पण द्वारा। २. बलिहरण द्वारा। ३. प्रतिदिन श्राद्ध द्वारा।

१- तपर्ण द्वारा

मनु के अनुसार तर्पण करना पितृयज्ञ है।"[३] वृद्ध गौतम के अनुसार पितरों के लिए जो काम किया जाता है, उसे पितृयज्ञ कहा जाता है।"[४]

२- बलिहरण द्वारा

मनु के अनुसार बलि का शेषांश दक्षिण दिशा में पितरों के लिए स्वधा रूप में देना चाहिए।"[५]

१- अयाज्ययाजनैश्चैव नास्तिक्येन च कर्मणाम्।
कुलान्याशु विनश्यन्ति यानि हीनानि मन्त्रतः।। मनुस्मृति-३.६५

२- अथर्व० - १६-५५-३

३- अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतोनृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।। मनुस्मृति - ३.७०

४- वृ० गौतम०- ८.११

५- पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये ।
पितृभ्यो बलिशेषं तु सर्व दक्षिणतो हरेत्।। मनुस्मृति -३.६१

३- प्रतिदिन श्राद्ध द्वारा

मनु के अनुसार गृहस्थ अन्नादि से, जल से, दूध, मूल और फलों से पितरों को सन्तुष्ट करता हुआ प्रतिदिन श्राद्ध करें।"[१] याज्ञवल्क्य के अनुसार प्रतिदिन पितरों और मनुष्यों को अन्न और जल देना चाहिए।"[२] केवल अपने लिए भोजन नहीं बनाना चाहिए। उचित पदार्थों से जीवनकाल में तथा मृत्यु के पश्चात् पिण्डदान से अपने पितरों को तृप्त करना सन्तति का धर्म है।"[३]

४- बलि-वैश्वदेव यज्ञ

बृहत पाराशर के अनुसार यज्ञशेष से सभी दिशाओं में इन्द्र आदि देवताओं तथा अन्यों के लिए बलि-अन्न दें। इसे भूतयज्ञ या बलि वैश्वदेवयज्ञ कहते हैं।"[४] दक्ष का कहना है कि गृहस्थ को अपनी सामर्थ्य के अनुसार देवताओं, पितरों और मनुष्यों, विशेष रूप से दीन, अनाथ और तपस्वियों को भी भोजन देना चाहिये।"[५]

अथर्ववेद में कहा गया है कि कामना से प्रेरित होकर गौ,श्वान, कौए आदि जीवों को दिये जाने वाले भोज्य-पदार्थ को भी यज्ञ माना जाता था।"[६]

१- कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा।
पयोमूलफलैर्वाऽपि पितृभ्यः प्रीतिमावहन्।। मनुस्मृति- ३.८२

२- अन्नं पितृमनुष्येभ्यो, देयमप्यन्वहं जलम्।
स्वाध्यायं सततं कुर्यान्न पचेदन्नमात्मने।। याज्ञवल्क्य स्मृति- १.१०४

३- अथर्व० - २/३४

४- दशस्वाशासु यः कुर्याद् हुतशेषाद् बलिं द्विजः।
इन्द्रादिभ्यस्तथाऽन्येभ्यः, स वै भूतमखो मतः।। बृहत् पराशर- ६.७८-७६

५- वैश्वदेवं तथातिथ्यमुद्घृतं चापि शक्तितः।
देव-पितृ-मनुष्याणां, दीनानाथतपस्विनाम्।। दक्ष स्मृति- ३.८-६

६- अथर्व० - १६-५५-७

५- अतिथि यज्ञ

याज्ञवल्क्य के अनुसार पथिक, श्रोत्रिय और वेद के पण्डित, ये गृहस्थ के लिए मान्य अतिथि हैं।"[1] योग्य व्यक्ति का सम्मान सर्वप्रथम होना चाहिए, मनु के अनुसार पाखण्डी, वेदवचन के विरुद्ध व्रत एवं तपस्वी की वेशभूषा जटा कषाय वस्त्रादि धारण करने वाला, निषिद्ध कर्म करने वाले, वैडालवृत्ति, शठ हेतुवादी, बकवृत्ति आदि अतिथियों का वचनमात्र से भी सत्कार नहीं करना चाहिए।"[2] श्रेष्ठ विद्वान, धार्मिक, सदाचारी, जनहितकारी, वेदानुरागी, ज्ञानी अतिथि का सत्कार करना आवश्यक माना जाता था। जिससे वह निश्चिन्त होकर विद्याविस्तार कार्यों को कर सके।"[3]

यज्ञ

वैदिक संहिता काल में नारी की स्थिति सम्म्ानजनक थी। वह पति के साथ यज्ञ वेदी के समीप विराजमान होती थी। शायद इसीलिए अनेक अनुष्ठानों पर पति-पत्नी द्वारा संयुक्त रूप से किये गये कार्यों का वर्णन है। ऋक् संहिता के प्रथम मण्डल"[4] के २७ वें सूक्त तथा पंचम मण्डल"[5] के ४३ वें सूक्त में संयुक्त रूप में यज्ञ का वर्णन है। कात्यायन का कथन है कि प्रवास में जाते समय पति यज्ञ का समस्त भार पत्नी को देकर जाए। यज्ञ

१- अध्वनीनोऽतिथिर्ज्ञेयः श्रोत्रियो वेदपारगः।
मान्यावेतौ गृहस्थस्य, ब्रह्मलोकमभीत्सतः।। याज्ञ०- १.१११

२- पाषण्डिनो विकर्मस्थान्, वैडालव्रतिकान् शठान्।
हैतुकान् बकवृत्तींश्च, वाड्मात्रेणापि नार्चयेत्।। मनु -४.३०

३- अथर्व० - ११-११

४- संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन्।
रिरिक्वांसस्तन्वः कण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः।। ऋक् सं०- १,७२,५

५- बृहद्वयो बृहते तुभ्यमग्ने धियाजुरो मिथुनासः सचन्त।। ऋक्० ५/४३/१५

का पवित्र कार्य है, अतः आज्ञाकारिणी, चतुर, प्रिय बोलने वाली पत्नी को यज्ञ का कार्य सौंपें। यज्ञ के द्वारा सौभाग्य, अवैधव्य, पतिभक्ति आदि गुण प्राप्त होते हैं।"[१] लघु व्यास संहिता का आदेश है कि पति की आज्ञा प्राप्त करके स्त्री विधिवत् यज्ञ करे। यज्ञ करने का यही अधिकार शिष्य और पुत्र को भी दिया गया है।"[२] ऋक संहिता के दशम-मण्डल के ११४ वें सूक्त में नारी को "चतुष्कपर्दा" कहकर पुकारा गया है, जिसका आशय यज्ञीय वेदी के निर्माण में कुशल नारी है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय नारी यज्ञ के सभी अवयवों से सुपरिचित थी। "चतुष्कपर्दा" शब्द का अर्थ कुछ विद्वानों की दृष्टि में धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी पुरुषार्थ की साधिका नारी से है। पहले अर्थ में नारी की योग्यता और दूसरे अर्थ में उसके वैदुष्य का वर्णन है।"[३]

ऋक् संहिता दशम मण्डल के १५१ वें सूक्त का साक्षात्कार करने वाली श्रद्धा कहती है कि वायु को अपना रक्षक बनाने की अभिलाषा करने वाले देवता तथा मनुष्य श्रद्धा की आराधना करते हैं। उपासकों के निश्चय का

१- कात्या०- १६.१-४

२- ऋत्विक् पुत्रोऽथवा पत्नी, शिष्योऽपि च सहोदरः।
प्राप्यानुज्ञां विशेषेण, जुहुयाद् वा यथाविधि।। ल० व्यास० - २.२

३- चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते।
तस्मां सुपर्णा वृषणा नि षिदतुर्यत्र देवा दधिरेभागधेयम् ।। ऋक्० - १०-११४-३

कारण श्रद्धा ही है। श्रद्धा का आनुकूल्य ही वैभव-प्राप्ति का साधन है। प्रातः, मध्यान्ह एवं सायंकाल श्रद्धा ही हमारे द्वारा आहूत होती है।"[1] दशम-मण्डल के १०७ वें सूक्त में दान-दाता की प्रशंसा की गयी है। दानशील व्यक्ति उस समय ग्राम का प्रथम नागरिक माना जाता था। उदार व्यक्ति को राजा के समान आदर मिलता था।"[2] ऋक्संहिता आठवें मण्डल के ९१वें सूक्त में एक कन्या को यज्ञ में देवराज इन्द्र को सोमरस प्रदान करते हुए दिखाया गया है।"[3] विष्णु स्मृति के अनुसार यदि एक ही वर्ण की कई पत्नियां हों तो उनमें सबसे पहले जिससे विवाह हुआ हो उसी के साथ धार्मिक कृत्य किये जाएं। यदि पहले अर्न्तजातीय विवाह हुआ हो तो अपने वर्ण वाली पत्नी को प्रधानता दी जाए, भले ही उससे विवाह बाद में हुआ हो। यदि अपने वर्ण की पत्नी न हो तो अपने से बाद वाली जाति की पत्नी के साथ धार्मिक कृत्य करने चाहिए। ब्राह्मण शूद्र पत्नी के साथ धार्मिक कृत्य नहीं कर सकता।"[4]

१- श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्य याकूत्या श्रद्धया विदन्ते वसु।।
श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः।। ऋक्संहिता- १०-१५१-४-५

२- दक्षिणावान्प्रथमो हूत एति दक्षिणावान्ग्रामणीरग्रमेति।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां यः प्रथमो दक्षिणामाविवाय।। ऋक्०- १०-१०७-५

३- कन्या वारवायती सोममपि स्रुताविदत्।
अस्तं भवन्त्यब्रवीदिन्द्राय सुनवै त्वा शक्राय सुनवै त्वा।।

४- सवर्णासु बहुभार्यासु विद्यमानासु ज्येष्ठया सह धर्मकार्य कुर्यात्।
मिश्रासु च कनिष्ठयापि समानवर्णया, समानवर्णाया अभावे त्वनन्तरयैवापदि च।
न त्वेव द्विजः शुद्रया।। विष्णु०- २६.२४

यजुर्वेद संहिता में गृहस्थ पति-पत्नी के दृष्टान्त से यज्ञपति राजा, पृथिवी एवं राजलक्ष्मी का सुन्दर निदर्शन किया गया है।''[१]

अत्रि संहिता का आदेश है कि स्त्री वामाङ्गी है किन्तु यज्ञ, विवाह और श्राद्ध में वह पति के दाहिनी और बैठती है।''[२] ऋक्-संहिता पांचवें मण्डल के २८ वें सूक्त में विश्ववारा नामक नारी का वर्णन है, जो प्रतिदिन प्रायः स्वयं यज्ञ करती है।''[३] यजुर्वेद में माता-पिता दोनों के लिये ''पितरों'' शब्द का प्रयोग किया गया है। जिसमें ब्रह्मानन्द एवं ज्ञान के लिये प्रार्थना की गयी है।''[४] शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि पत्नी के बिना दी गयी पति की आहुति देवता स्वीकार नहीं करते हैं।''[५] राजा-प्रजा के पालनरूपी कार्य को यज्ञ की संज्ञा देते हुए सेनाओं एवं राज्य-व्यवस्थाओं की समता उन घृत-धाराओं से की गयी है, जो सुकन्याओं की भांति अपने पति (अग्निदेव) से मिलने के लिए उत्सुक हैं।''[६] ऋक्संहिता में मंत्र मिलता है कि अच्छी नारी प्राप्त करने के लिए दानदाता होना आवश्यक था। मन्त्र-द्रष्टी प्रस्तुत सूक्त के नवम, दशम मन्त्र में कहती है- ''दान दाता व्यक्तियों को घृत, दूग्ध देने वाली गौ, सुन्दरी, सुशीला, नवोढ़ा पत्नी को प्राप्त होती है और

१- जनयत्यै त्वा सं यौमिदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वां धर्मोऽसि विश्वायुरुरुपथा उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम् अग्निष्टे त्वचं मा सीद् देवस्त्वा सविता श्रवयतु वर्षिष्ठे धिनाके। यजु०- १/२२

२- जीवद्भर्तरि वामाङ्गी, मृते वाऽपि सुदक्षिणे।
श्राद्धे यज्ञे विवाहे च, पत्नी दक्षिणतः सदा।। अत्रि सं०- १३८-१३६

३- समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया विभाति।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवॉ ईलाना हविषा घृताची।। ऋ०- ८/६१/१

४- ''नमो वः पितरौ'' । यजु० - २/३२

५- शतपथ ब्राह्मण-५,१,६,१०

६- कन्या इव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीभिः।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ।। यजु० - १७-६७

ऐसे लोग अपने शत्रुओं पर विजय भी प्राप्त करते हैं। द्रुतगामी अश्व, सुन्दरी नारी, पुष्करणी के समान स्वच्छ तथा देवमन्दिर के समान चित्त को प्रसन्न निवास स्थान भी दान देने वालों को सुलभ होता है।[1]

१- भोजा जिग्युः सुरभिं योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्वं या सुवासाः।
भोजा जिग्युरन्तः पेयं सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूताः प्रयन्ति।।
भोजायाश्वं सं मृजन्त्याशुं भोजायास्ते कन्या शुम्भमाना।
भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव चित्रम्।। ऋ०- १०-१०७-६-१०

षष्ठ अध्याय

वैदिक नारी का आर्थिक जीवन

वैदिक युग के आर्थिक जीवन के मुख्य आधार कृषि, पशुपालन, शिल्पकारी, इत्यादि थे। इसमें पुरुष के साथ स्त्री की भी सहभागिता होती थी, क्योंकि वह पुरुष की सहचरी है।

कृषि

कृषि का वैदिक जीवन में बहुत अधिक महत्त्व था। अथर्ववेद के पृथिवीसूक्त में कहा गया है कि पृथिवी मेरी माता है और मै इसका पुत्र हूँ।"[१] एक मंत्र में क्षेत्रस्य पतिः का उल्लेख मिलता है।"[२] मैक्डानेल महोदय का मत है कि, 'क्षेत्रस्य पतिः' खेतों का देवता है। "क्षेत्रस्य पति" उसी प्रकार देवता है, जिस प्रकार गृह का देवता "वास्तोष्पति" है।"[३] अन्यत्र क्षेत्रस्य पत्नी का भी उल्लेख है, जो खेतों की देवी है।[४] ऋग्वेद में एक मंत्र ऐसा भी मिलता है, जिसमें इन्द्र के प्रसन्न होने पर अपाला ने वर माँगा था। अपाला ने वर माँगते समय "सर्वप्रथम अपने गंजे पिता के सिर पर बाल उग आने की बात कही। इसके बाद पिता के ऊसर खेतों को उपजाऊ बनाने की याचना की और अन्त में अपने शरीर के कुष्ठ रोग दूर होने की बात की।"[५]

१- तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्या। अथर्ववेद- १०। ३३। १२
२- नमः क्षेत्रस्य पतये । अथर्ववेद - २,८,५
३- वैदिक माइथोलाजी - पृष्ठ १२८।
४- अथर्ववेद १०,६,१८ तथा १३।
५- इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय।
शिरस्तस्योतर्वरामादिदं म उपोदिरे ।। ऋ०- ८। ६१। ५।

अथर्ववेद में एक स्थान पर कहा गया है कि, हे सीता! हम तुम्हारी वन्दना करते हैं। शुनःशीर हमें प्रसन्न करें वे स्वर्ग से बने दूध से इस सीता को सींचें।''[1] तुम सौभाग्यवती बनो जिससे हमारे खेत, प्रसन्न होकर अच्छे फलों को देने वाले हों।''[2]

१– शुनासीरेह स्म में जुषेथाम्।
यद्दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुपसिञ्चतम्।। अथर्ववेद - १३, १७, ७।

२– सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।
यथा नः सुमना असो यथा वः सुफलाभुवः। अथर्ववेद - ३,१७,८।

पशुपालन (गो पालन)

गो-पालन से दीर्घ आयु मिलती थी।''[1] अथर्ववेद में स्त्रियाँ गायों की सेवा में लगी रहती थीं। गायों की सेवा को यज्ञ करने के समान पवित्र समझा जाता था।''[2] अथर्व संहिता में गाय माता से मिलने वाले लाभ को विस्तार से बताया गया है। गाय से दूध, घी आदि प्राप्त होता है और इसके सेवन से शरीर पुष्ट होता है। अल्पज्ञानी ज्ञानी, निर्धन मानव धनवान् तथा कुरूप लोग रूपवान् हो जाते हैं। जो लोग इनकी सेवा (घर में रखते हैं) करते हैं, वे सदा आनंद की अनुभूति करते हैं। गाय का सभी लोग आदर करते है।''[3] गाय को अघ्न्या कहा गया है। अथर्ववेद में गाय की रक्षा के लिए कुछ बातें बतायी गयी हैं। चोर उनका हरण न करें, उन पर शस्त्रों द्वारा वार न करें। उनका स्थान सर्वत्र निर्विघ्न हो। जो लोग इनकी हत्या या भक्षण करते हों, उन्हें उनको न सौंपा जाये।''[4]

१- अथर्ववेद - ६ । ८ । ७८

२- यजुर्वेद - ३ ।४६

३- यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरंचित् कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो वृहद्वो वय उच्यते सभासु ।। अथर्ववेद - ४,२१,६

४- अथर्ववेद- ४-५-२१

गाय शस्य के उत्थान, उत्पादन तथा उसकी आर्थिक व्यवस्था सुदृढ़ करने में सहायक है। गाय पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों तथा आत्मा की माता, नक्षत्रों की पुत्री, बारह अदित्यों की बहन, अमृत की धारा है, इसलिए इसे दैनिक जीवन में आवश्यक माना गया है।"[१] अथर्व संहिता में गाय को उत्पादन कार्य में सहायक माना गया है, क्योंकि इसकी खाद उर्वरा शक्ति को बढ़ाने वाली और रोग नाशक मानी गयी है। गाय को "वशा" नाम से भी पुकारा जाता था। जिसके बारे में कहा गया है कि वह दूध देती है, भूमि को उर्वर बनाती है जिससे राष्ट्र की वृद्धि होती है।"[२] जिन गायों के कान पर ८ अंक बना दिया जाता था उन्हें "अष्टकर्ण्य" कहते थे।"[३]

१- ऋग्वेद - ८। १०१ । १५
२- अथर्वसंहिता- १० - १०। ४
३- ऋग्वेद- १०। ६२ । ७
मैत्रायणी संहिता- ४ । २ । ६

वस्त्र उद्योग

वैदिक युग में वस्त्र उद्योग उन्नत अवस्था में था। कपड़ा बुनने वाले को "वाय" (जुलाहा) कहा जाता था, जो नाना प्रकार के वस्त्रों का निर्माण करता था। उस समय चर्खे की चर्चा घर-घर में थी।"[१] जिसका अर्थ यह लगाया जा सकता है कि पुरुष वर्ग के साथ स्त्रियां भी इस कार्य मे लगी थी"[२] नारी समाज की रुचि का इससे पता चलता है कि वैदिक साहित्य के उद्योग क्षेत्र में उसको विभिन्न नामों से संबोधित किया गया है। जुलाही (सरी[३]-वयित्री[४]), रंगरेजिन (रजयित्री[५]), धोबिन (वासः-पप्पूली)[६] आदि। अथर्ववेद में रात और दिन को दो युवतियों के समान बताकर यह कहा गया है कि ये युवतियाँ (दिन और रात) वर्ष का ताना-बाना बुनती हैं।"[७] ऋक् संहिता में माता अपने सन्तान के लिए वस्त्रों का सृजन करती है।"[८] अथर्व संहिता में भी इस प्रकार की नारी का वर्णन है।[९]

१- अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय आ त्वैषमुग्रमव ईमहे वयम्।
ते स्वामिनो रुद्रिया षर्षनिर्णिजः सिंहान हेषक्रतवः सुदानवः। ऋ०- ३ । २६ । ५

२- इमे वयत्ति पितरः । ऋ० - १०। १३० । १

३- ऋक्० - १० । ७१ । ६

४- पञ्चविश ब्रा० - १ । ८ । ६

५- यजु० - ३० । १२ -

६- वा० यजु० - अध्याय - ३०

७- अथर्ववेद - १० । ७ । ४२

८- ऋक् संहिता - ५ - ४७ - ६

९- अथर्वसंहिता - १४ - २ - ५१

ऋक् संहिता में यज्ञ के अवसर पर पहने जाने वाले वस्त्रों की निर्मात्री दो स्त्रियों पर उल्लेख है।[१]

शतपथ ब्रा० के अुनसार ऊन को कातने का कार्य प्रायः स्त्रियाँ करती थीं।[२]

इस युग में "सूची" (सूई) से कपड़े सीने का कार्य भी विकसित हो चुका था। ऋग्वेद के एक मंत्र में छिद्र करती हुई सुई से सीने का उल्लेख विद्यमान है।[३] चटाई बनाने का उद्योग भी विकसित था, जिसके लिये नरकट को पत्थर से कूट कर प्रयुक्त किया जाता था। यहाँ कार्य प्रायः स्त्रियाँ ही किया करती थीं।"[४]

इस प्रकार वैदिक युगीन नारी को हम सभी प्रकार के उद्योगों में संलग्न पाते हैं।

१- साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते।
तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती। ऋ० - २ । ३ । ६

२- शत० ब्रा० - १२-७-२-११

३- ऋग्वेद - २-३२-४

४- यथा नडं कशिपुने स्त्रियो भिन्दन्त्यश्मना। ऋग्वेद - ६-१३८-५

सप्तम अध्याय

वैदिक नारी और शिक्षा

वैदिक काल में नारी की शिक्षा सुव्यवस्थित थी। समाज के उच्च स्तर की कन्याओं में उपनयन संस्कार का प्रचलन था। इस तथ्य की सूचना 'पुरा कल्पे तु नारीनां मौज्जीबन्ध न मिष्यते' आदि प्रख्यात स्मृति-वचनों के द्वारा प्राप्त होती है। उपनयन के अनन्तर उन्हें सुव्यवस्थित शिक्षण दिया जाता था, जिसका अमृतमय परिणाम तत्कालीन नारियों के बौद्धिक-विकास तथा गम्भीर पाण्डित्य के ऊपर स्पष्टतः प्रतिफलित दृष्टिगत होता है।[1]

नारी के लिए शिक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण मानी जाती थी। ब्राह्मण-वर्ण की कन्याओं के लिए वेदों की शिक्षा और क्षत्रिय-वर्ण की कन्याओं के लिए धनुष-बाण की शिक्षा का उचित प्रबन्ध था।[2] हारीत-संहिता के अनुसार 'स्त्रियाँ दो प्रकार की होती हैं "ब्रह्मवादिनी" और "सद्योवाहा"।[3]

ऐसी स्त्रियाँ भी अज्ञात नहीं थीं जो आजीवन आध्यात्मचिंतन में ही लगी रहती थीं। उन्हें ब्रह्मवादिनी कहा गया है। ये ब्रह्म और आत्मा के रहस्य को जानने के लिए जिज्ञासु रहती थीं उस समय स्त्री-शिक्षा का उचित प्रचार था। गार्गी, मैत्रेयी आदि स्त्रियों ने शास्त्रार्थ में प्रसिद्धि प्राप्त की। इससे स्पष्ट है कि, स्त्रियों को उदारतापूर्वक-शिक्षा दी जाती थी। कहीं-कहीं

---

१. वैदिक साहित्य और संस्कृति - बलदेव उपाध्याय - पृ० ४२४।

२. ऋग्वेद - १. ११२-१० । १०, १०२-२। मंडन मिश्र की पत्नी में इतनी बौद्धिक योग्यता थी और इसे इतनी स्वतंत्रता थी कि उसने अपने पति और शंकराचार्य के वाच शास्त्रार्थ में मध्यस्थ का काम किया था।

३. द्विविधाः स्त्रियों ब्रह्मवादिन्यः सद्योवाहश्च।
तत्र ब्रह्मवादिनीनामन्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्षचर्येति।। हारीतकृत वीर मित्रोदय (संस्कार प्रकाश)

तो सह-शिक्षा भी थी। किन्तु इसका प्रसार-प्रचार नही था। पढ़ने-लिखने में स्त्रियाँ पुरुषों से पीछे नहीं रहती थीं। काव्य, संगीत, नृत्य तथा अभिनय आदि ललित कलाओं में भी उन्हें दक्षता प्राप्त थी।

(क) सद्योवाहा

महिला छात्राओं के दो प्रकार उल्लेखनीय हैं- (क) सद्योद्वाहा तथा (ख) ब्रह्मवादिनी। इनमे से "सद्योद्वाहा" स्त्रियाँ वे होती थीं जो ब्रह्मचर्य आश्रम के अनन्तर गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होती थीं तथा उस आश्रम के नियमों का पालन करती हुई मातृत्व के महनीय पद पर प्रतिष्ठित होती थीं। उनके विवाह का वय १६-१७ वर्ष के आसपास मानना चाहिए। आठ वर्ष से आरम्भ कर लगभग ६ वर्षों तक वे उन समग्र विद्याओं का शिक्षण प्राप्त करती थीं जो उन्हें सद्गृहिणी बनाने में पर्याप्त् सहायक होती थीं। उन्हें संगीत की शिक्षा भी दी जाती थी, परन्तु अधिकतर उन्हें धार्मिक शिक्षा ही दी जाती थी। यह तो निर्विवाद सत्य है कि वैदिक यज्ञ में स्त्रियों का महत्वपूर्ण स्थान था। यजमान पत्नी कें रूप में वे अग्न्याधान करने वाले अपने पतिदेव के धार्मिक कृत्यों में हाँथ बटाती थीं, अग्नि के परिचरण के अवसर पर वे तत्तत् विशिष्ट मन्त्रों के उच्चारण के संग हवन-कार्य का भी सम्पादन करती थीं।[5]

---

५. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति - आचार्य बलदेव उपाध्याय पृ० ४२४

(ख) ब्रह्मवादिनी

अध्यात्म-जीवन की रहस्यभरी गुत्थियों को अपनी तपस्या, अनुभूति तथा विद्वता से सुलझाना ब्रह्मवादिनी का एक सहज-सरल व्यापार था। साथ ही ब्रह्मतत्त्व के व्याख्यान तथा परिष्कार में ये उस युग के प्रख्यात दार्शनिकों से लोहा लेने में तनिक भी हिचकती न थी।

बृहदारण्यक उपनिषद् ऐसी दो ब्रह्मवादिनी नारियों को विद्वत्ता का परिचय बड़े ही विशद शब्दों में देता है। इनमें से एक तो है उस युग के महनीय तत्त्वज्ञानी याज्ञवल्क्य ऋषि की धर्मपत्नी मैत्रेयी और दूसरी है उन्ही याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ करने वाली वाचक्नवी गार्गी। मैत्रेयी के जीवन में हम तत्त्वज्ञान से समुत्पन्न मनः संतोष, मनःशक्ति तथा पूर्ण वैराग्य का साक्षात्कार करते हैं। अपने जीवन की सन्ध्या में जब याज्ञवल्क्य जी ने व्यावहारिक नीति को अपना कर अपने सम्पत्ति का बटवारा अपनी दोनों भार्याओं-कात्यायनी और मैत्रेयी- में कर दिया, तब ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी ने झुंझलाकर कहा था - येनाहं नामृता स्याम् कि लेन कुर्यामिति, अर्थात जो धन-समृद्धि मुझे अमरत्व प्रदान नही कर सकती उससे मेरा लाभ ही क्या ? इसके उत्तर में महर्षि याज्ञवल्क्य ने आत्मा की अनन्यता, महनीयता तथा श्रेष्ठता के विषय में अपना दार्शनिक पक्ष समझाया था, जो बृहदारण्यक के पृष्ठों में वैशद्येन अंकित है।[1]

१- वैदिक साहित्य और संस्कृति- आचार्य बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ४२४-४२५ ।

इसी उपनिषद् में उल्लेख है कि विदेह राज जनक के दरबार में याज्ञवल्क्य अनेक पण्डितो को परस्त करने के पश्चात् गार्गी वाचनक्नवी की विद्वता के समक्ष अकस्मात हतप्रभ हो गये थे।[1]

ऐतरेय ब्राह्मण में कुमारी गन्धर्वगृहीता का उल्लेख है, जिसे वहाँ परम विदुषी तथा वक्तृता में पारगंत कहा गया है।[2] ''मैत्रेयी याज्ञवल्क्य की पत्नी थी, जिसकी रुचि सासांरिक सुख-भोग के प्रति न होकर अध्यात्म चिंतन तथा ब्रह्मविद्या में थी। जब याज्ञवल्क्य ने परिव्राजक होने का निश्चय किया तो उसने चाहा कि अपनी पूरी सम्पत्ति को दोनों पत्नियों मैत्रेयी और कात्यायनी मे बाँट दें। जब यह बात मैत्रेयी को पता चली तो उसने कहा- यदि धनधान्य से भरी हुयी पूरी पृथिवी भी मुझे मिल जाये तो भी उससे मै अमृतत्व कैसे प्राप्त कर सकूँगी। जिससे मै अमर नही हो सकती उसे लेकर मै क्या करूँगी। जो ज्ञान आपको मिला है वही ज्ञान आप मुझे प्रदान कीजिये।[3]

१- वृ० उ० = ३.६. तथा ८।
२- ऐतरेय ब्राह्मण - ५१४
३- 'सा होवाच मैत्रेयी। यन्मडइयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथं तेनामृता स्यामिति.......
येनाहं नाहममृता स्यां किमहं तेन कुर्याम यदेव भवान्वेद तदेव मे ब्रूहीति।'
शतपथ ब्राह्मण - १४/५/४/२-३

वैदिक ऋषियों में स्त्रियों का होना बड़े गौरव की बात है। उनकी कृतियों को वैदिक संहिताओं में स्थान मिला था। इन नारी ऋषियों ने वेदमंत्रो का तत्व स्पष्ट किया था। नारी ऋषियों का भावार्थ उनके द्वारा दृष्ट कुछ मंत्रो से स्पष्ट हो जाता है।

रोमशा संज्ञक नारी ऋषि ने ऋग्वेदसंहिता प्रथम मण्डल के १२६ वें सूक्त की १ से ७ ऋचाओं का साक्षात्कार किया। ऋग्वेद के एक मंत्र से पता चलता है कि सिन्धु नदी के समीपवर्ती भू-भाग के स्वामी भावयव्य ने बुद्धिसाधिक रोमशा की प्राप्ति के लिए सहस्र यज्ञों का अनुष्ठान किया था। यश की कामना वाले इस राजा से प्रभावित होकर अन्त में रोमशा ने उसे स्वीकार कर लिया।"[१]

ऋग्वेद के दशवे मण्डल में घोषा कहती है- "मै राजकन्या घोषा सर्वत्र वेद की घोषणा करने वाली और वेद का सन्देश पहुँचाने वाली स्तुति करने वाली हूँ। हे देव मै हमेशा आपका ही यश गाती हूँ। और विद्वानों से विचार-विमर्श भी करती हूँ। आप सदा मेरे पास रहकर मेरे इन इन्द्रियरूपी अश्वों से युक्त शरीर-रूपी रथ के साथ मेरे मन रूपी अश्व का दमन करें।"[२]

१- अमन्दान्त्स्तोमान्प्र भरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य।
यो में सहस्रमिमीत् सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ।। ऋक्०- १।१२६।१

२- युवां ह घोषा पर्यश्विना यतो राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वा नरा भूतं मे अह्न् उत्त भूतभक्तवे श्वायते रथिने शक्तमर्वते। ऋक्०- १०। ४०। ५

वैदिक काल मे कन्याओं का उपनयन या यज्ञोपवित संस्कार होता था,। ये कन्यायें ब्रह्मचर्याश्रम मे रहते हुए वेदों (विद्या) का अध्ययन करती थीं। नारियों के शिक्षित होने का तात्पर्य यह लगाया जाता है कि वे अपने पति के यज्ञादि कार्यो मे सहभागी रहती थीं और उनके बिना यज्ञ पूरा नहीं होता था।[१] गोमिल गृह्य सूत्र में विवाह के समय जिस कन्या को वर के लिए प्रदान किया जाता है, उसे 'यज्ञोपवितिनी' होना चाहिए। आश्वलायन श्रौत सूत्र में लिखा है कि बालक और बालिका दोनो के लिए ब्रह्मचर्य समान है। अथर्ववेद के अनुसार ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने के पश्चात् ही कन्या युवा पति को प्राप्त करती है।"[२]

ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में अनेक विदुषी नारियों का उदाहरण मिलता है। शतपथ ब्रा० में राजा जनक की सभा का वर्णन् है, जिसमें कुरु पाञ्चाल के ब्राह्मण एकत्र थे। वही वाक् कुशल गार्गी भी गई थी। उसने महर्षि याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ भी किया था। अनेकों प्रश्न पूँछने के पश्चात् गार्गी ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया था - ब्रह्मलोक किसमें समाहित है? शायद याज्ञवल्क्य इसका उत्तर नही दे सके, और यह कहकर शान्त हो गये कि गार्गी अब अधिक न पूँछो।[३]

१- अयज्ञो वा ह्येष योऽपत्नीकः तैत्तिरीय ब्रा० २।२।२।६

२- ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। अथर्ववेद - ११-५-१८

३- कस्मिन्नु ब्रह्मलोका ओताश्च प्रोताश्चेति स होवाच गार्गी मातिप्राक्षीर्मा ते व्यपप्तदनतिप्रश्न्या वै देवता अति पृच्छसि गार्गी मातिप्राक्षीः। शतपथ ब्राह्मण १४।६।६।१

ऋग्वेद के एक सूक्त में पौलोमी शची द्वारा अपने मनःस्थिति प्रगट किये जाने का वर्णन है–

"मै ज्ञानवती हूँ। मै मूर्धन्य हूँ। मै तेजस्विनी हूँ। वक्तृत्त्व करने वाली हूँ , मै शत्रु का विनाश करने वाली हूँ, पति मेरे अनुकूल रहकर व्यवहार करे। मेरे पुत्र शत्रुओं का विनाश करने वाले है; मेरी पुत्री तेजस्विनी है, मै सर्वत्र विजयी हूँ मेरी प्रशंसा पति के विषय में है या मैं सदा अपने पति की प्रशंसा करती हूँ।"[1]

इसी प्रकार कुछ और मंत्र द्रष्टा स्त्रियाँ हैं जिनमे लोमशा, लोपामुद्रा, विश्वनारा, सिकता, विवस्वान्–पुत्री यमी, पुलोमपुत्री शची, कामगोत्रीया श्रद्धा, ब्रह्मवादिनी जूहू, अम्भृणपुत्री वाक्, सूर्या, इन्द्राणी, कक्षीवानुपुत्री घोषा, अर्चनाना, गौरवीति, अपाला, असंगभार्या तथा आंगिराकन्या शाश्वती आदि उल्लेखनीय है। ऋग्वेद के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ऋषिकाओं की संख्या दो दर्जन से कम नहीं हैं।

१– अह केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विराचनी।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहनाया।।

मन्त्र दृष्टा नारी

१- अदिति

ऋग्वेद के १० वें मण्डल के ७२ वें सूक्त का वृहस्पति अथवा अदिति को ऋषि कहा गया है।

इस सूक्त में अदिति का नाम उद्धृत है। शायद इसीलिए अदिति को इसका ऋषि कहा गया है। अदिति दक्ष की पुत्री कही गई है और दक्ष (सूर्य) को भी अदिति का पुत्र बतलाया गया है।

उन्तान पद (वृक्ष) से भूमि से दिशायें उत्पन्न हुई अदिति से और दक्ष से अदिति उत्पन्न। "हे दक्ष जो तेरी दुहिता अदिति है, उसने देवों को जन्म दिया। उसके पश्चात् महान् अमृत बन्धु (अमर) देव उत्पन्न हुये। अदिति के शरीर से जो आठ पुत्र "मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् तथा आदित्य आठ पुत्र उत्पन्न हुये उनमें से सात के साथ वह देवताओं के पास गयी।

२-इन्द्र मातायें

इसी प्रकार इन्द्र की माताओं का सूक्त (१०-१५३) भी कल्पित नाम से है। इस सूक्त में इन्द्र के जन्म तथा वीरता का वर्णन है। असली ऋषि का नाम मालूम न होने पर इन्द्र को जन्म देने वाली इन्द्र-माताओं को इसका रचयिता मान लिया गया। इसकी कुछ ऋचायें है-

"उत्पन्न इन्द्र के पास कार्य-तत्पर, सुन्दर वीर्य की इच्छा रखने वाली उपासना करती है।"

"हे इन्द्र साहस के बल से, ओज से पैदा होकर तुम कामना के पूरक हो।"

"हे इन्द्र ओज के साथ वज्र को तेज करो। तुम अपने साथी अर्क को दोनों बांहों में धारण करते हो।"

३- इन्द्राणी

यह नाम कल्पना युक्त है। इसकी ऋचाओं में कहीं इन्द्राणी का नाम नही आया है- १०,१४५। इन्द्राणी का ऋग्वेद के प्रसिद्ध वृषाकपि सूक्त में इन्द्राणी के तेजस्विनी होने का पता चलता है- (१०/८६)। इन्द्राणी घर में अग्नि के अधिक सम्मान को सह नही सकी, इसीलिए वह इन्द्र के समक्ष अपने आक्रोश को प्रकट करती है। अग्नि को घी समर्पित करते हुए इन्द्र ने आरम्भ किया-

"सोम छानने के लिये कहा था, पर स्तोताओं ने देवेन्द्र की उस यज्ञ में स्तुति नही की, जहां यज्ञ में पुष्ट मेरा मित्र आर्य वृषाकपि संतुष्ट हुआ। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है। इन्द्राणी कहती है- हे "इन्द्र, तुम व्याकुल होकर वृषाकपि के पास दौड़े जाते हो, अन्यत्र सोमपान के लिए नहीं जाते।"

"क्या है, जो तुम्हे पीत मृग वृषाकपि ने ऐसा बना दिया कि उसके लिये तुम पुष्टिकारक धन देते हो।"

“हे इन्द्र, जिस इस प्रिय वृषाकपि के तुम रक्षक हो। उसके कान को वराह की चाह वाला कुत्ता काटे।

“मेरे लिये साफ किये हुए अभीष्ट वस्तु को कोप ने दूषित कर दिया इसका सिर काट लो। इस दुष्कर्मा को सुख न होवे।”

इन्द्र कहता है–“सुबाहु सुन्दर अंगुलियों वाली, बड़े बालों तथा मोटी जाघों वाली हे शूरइन्द्राणी तुम हमारे वृषाकपि पर क्यों क्रुद्ध हो?”

इन्द्राणी – यह दुष्ट वृषाकपि मुझे अवीरपुत्रों वाली समझता है। पर मै वीरपुत्रा इन्द्र–पत्नी हूँ। मेरे मित्र मरुद्गण हैं

“हवन या युद्ध के समय स्त्री वहां पहले आती है। सत्य की विधाता वीरपुत्रा “इन्द्र–पत्नी की पूजा होती है।”

इन्द्र – इन स्त्रियों में इन्द्राणी को मैने सौभाग्यवती सुना है। दूसरों – की तरह पति बुढ़ापे से नही मरता।

“हे इन्द्राणी जिसके द्वारा प्राप्त प्रिय हवि देवताओं के पास जाती है। मैं अपने उस मित्र वृषाकपि के बिना प्रसन्न नहीं रह सकता।

४- कक्षीवान्-पुत्री घोषा

अश्विनी कुमारों की प्रशंसा में घोषा ने दो सूक्त रचे हैं (१०,३६,४०) हैं। पहले सूक्त में उसने भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के ऊपर अश्विनी-कुमारों के किये गये उपकारों का उल्लेख किया है। ये व्यक्ति थे - तुग्र-सन्तान, च्यवान (१०,३६,५) विमद, शुन्ध्यु, पुरुमित्र, वध्रीमती (७), पेदु (१०), शंयु (१३) और भृगु (१४)।

घोषा को अपने ऊपर दृढ़ विश्वास था और वह अपनी सुन्दर रचनाओं से किसी भी ऋषि का मुकाबला कर सकती थी।

"हे अश्विनों, तुम्हारा सुनिर्मित रथ सारी पृथ्वी पर जाने वाला है, जिसे हविष्मान् प्रतिदिन प्रतिरात्रि और प्रत्येक उषःकाल में पुकारते हैं। तुम्हारे पिता के सुन्दरतापूर्वक पुकारे जाने वाले नाम की तरह हम तुम्हारे (नाम का) सदा आह्वान करते है।"[1]

१- यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता।
शश्वत्तमासस्तमु वामिदं वयं, पितुर्न नाम सुहवं हवामहे।। ऋग्वेद -१० ।३६ ।१।

हे अश्विनों, जैसे भृगु लोग रथ को गढ़ते हैं, वैसे इस स्तोम को मैने तुम्हारे लिये बनाया। जिस प्रकार पति के लिए वधू को अलंकृत करते हैं, वैसे ही मैने मानों नित्य पुत्र और पौत्र को धारण करती हुई सी इसे अलंकृत किया।"[1]

दूसरी तरफ (१०/४) सूक्त में घोषा (५) कुत्स (६), भज्यु-वंशज सिंजार-उशना, (७) कृश-संजु का उल्लेख किया गया है। घोषा राजा की दुहिता थी।

हे अश्विनों, राजा की दुहिता यायावर घोषा तुमसे बात करती है, हे नेताओं (वह) तुमसे आज्ञा मांगती है। दिन हो या रात तुम दोनों हर समय अश्व वाले रथी अर्वा (शत्रु) का दमन करते हो।

१- एतं वां स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथम्।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नित्यं न सुनं तनयं दधानाः।। ऋग्वेद १०।३९।१४।

मैं उस बात को नही जानती, उसे तुम बतला दो, जिसे युवा और युवती घरों मे रहकर अनुभव करते हैं। मै स्त्री प्रिय सुपुष्ट वीर्यवान् तरुण के गृह में जाऊँ, हे अश्विनों, (मेरी) यह कामना पूरी करो।[1]

सप्त सिन्धु की कुमारियाँ क्या कामना करती थीं ? यह घोषा के इस वचन से ज्ञात होता है। स्वस्थ एवं प्रिय पति पाना उनके जीवन का लक्ष्य था। घोषा पुत्र कक्षीवान् एक बड़े ऋषि थे, जिनकी ऋचायें ऋग्वेद के पहले मण्डल के दस सूक्तों में मिलती है। घोषा चिर काल तक पिता के घर में कुमारी बैठी रही।[2]

१- न तस्य विद्म तदु षु प्र वोचत युवा ह यद्युवत्याः क्षेति योनिषु।
प्रियोस्त्रियस्य वृषभस्य रतिनो गृहं गमेमाश्विना तदुश्मासि।। ऋग्वेद - १० ।४० ।११ ।

२- युवंनरास्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय।
घोषाये चितिपतृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम्।। ऋग्वेद - ११७। ७

५- जूहू

यह कल्पित नाम प्रतीत होता है। दसवें मण्डल में जूहू का एक सूक्त मिलता है। यद्यपि जूहू को ब्रह्मवादिनी भी कहा जाता है, पर उसने मंत्रो में ब्रह्म की स्तुति न करके मात्र विश्देवोंकी स्तुति की है। उसके मंत्रो में ब्रह्मचारी का उल्लेख अवश्य हुआ है। जूहू के पति बृहस्पति ने उसे किसी कारण वश त्याग दिया था, जिसे देवो ने समझाया और उसे रास्ते पर लाने में सफलता पायी।

उन प्रथमों ने कहा ऐसा करने से ब्रह्म-पाप लगा फिर प्रथमजों सूर्य, वायु, जल, उग्र, सुखकर सोम और जल देवियों ने सत्य के साथ प्रायश्चित कराया।"[1]

प्रथम सोमराजा ने आकृष्ट हो ब्रह्म पत्नी को फिर से बृहस्पति को प्रदान किया। मित्र और वरुण ने उनका अनुगमन किया। होता अग्नि हाथ पकड़कर उसे ले आया।"[2]

१- तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्म किल्बिषेऽकूपारः सलिलो कूरिश्वा।
वीकूहरास्तप उग्रो मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतेन।। ऋग्वेद - १०।१०९।१

२- सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदाग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय।। ऋग्वेद- १०।१०९।२।

इसका शरीर हाथ से ही पकड़ना चाहिए, उन्होंने कहा, इस ब्रह्मजाया ने भेजे गये दूत के साथ उसी तरह सम्पर्क नहीं किया, जैसे क्षत्रिय का रक्षित राष्ट्र।"[१]

पुराने देवों और तपस्या में बैठे उन सात ऋषियों ने कहा- भीमा पत्नी को ब्राह्मण के पास ले आये निकृष्ट (पत्नी) भी परम स्थान पर स्थापित होती है।"[२]

बिना पत्नी के ब्रह्मचारी बृहस्पति देवताओं का एक अंग हो गया। सोम द्वारा लाई गई पत्नी जूहू को जैसे देवों ने, वैसे ही बृहस्पति ने प्राप्त किया।"[३]

१- हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्म जायेयमिति चेदवोचन्।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रिस्य ।। १०। १०६। ३

२- देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसे ते निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन्।। १०। १०६। ४

३- ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम्।
तेन जाया मन्वविन्द् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वां न देवाः।। १०। १०६। ५

देवों ने फिर (इसे) प्रदान किया, और फिर मनुष्यों ने प्रदान किया। राजाओं ने सच्ची बात करने वाली ब्रह्मपत्नी को फिर प्रदान किया।"[1]

ऋचाओं के अध्ययन से पता चलता है कि जूहू अग्नि देवता की पत्नी हैं।

६- शश्वती

अंगिरा-गोत्री यह ऋषिका भी कल्पित प्रतीत होती है। इसके नाम का एक मंत्र (८-१-३४) मिलता है, जिसमें अश्लील रति की बातें वर्णित हैं।"[2]

७- विवृहा

कश्यप-गोत्री यह ऋषिका भी कल्पित है। इसने एक ऋचा में यक्ष्मा के विनाश के लिए टोटका टोने की बात कही गयी है, जिसे हम इस ऋचा में पाते हैं। (१०-१६३-१०२)"[3]

१- पुनर्वै देवा अदद्दुः पुनर्मनुष्या उत।
राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्दद्दुः। ऋग्वेद - १०-१०९-६

२- अन्वस्य स्थूरं ददृशे पुरस्तां दनस्थ ऊरुरवरम्बमाणः।
शश्वती नार्यमिचक्ष्याह सुमद्रमर्य भोजनं विभर्षि।। ऋग्वेद - ८-१-३४

३- ग्रीवाम्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात्।
यक्ष्मं दोषण्यामंसाम्या बाहुम्यां कविवृहामि ते।। ऋग्वेद -१०-१६३-२

८- विश्पला

यह ऋषिका नहीं है, पर इसके ऊपर अश्विनों के उपकार करने का उल्लेख मिलता है।

"हे मनीषियों ! यह मन में होता है अश्विनों का तृप्तिकारक सुखद रथ आया है, वह सुकर्मा शुचिव्रत द्युलोक के नाती हैं। उन्होंने विश्पला का उपकार किया।"[१]

९- सिखंडनी काश्यपी

यह भी कल्पित नाम है। इसके सूक्त (९/१०४) को कश्यप-पुत्र पर्वत और नारद की भी कृति बतलाया जाता है। इस सूक्त में सोम (भाग) की महिमा गायी गई है, जिसमें कोई विशेषता नहीं है।"[२]

१०- सुदेवी

एक ऋचा में सुदास की पटरानी सुदेवी का उल्लेख मिलता है।"[३]

१- अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान् मदता मनीषिणः।
धियंजिन्वाधिष्ण्यां विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता। ऋग्वेद - १-१८२-१

२- प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उद्यतम्भूतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते। ऋग्वेद - ९-१०४-१

३- याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घवा याभिररुणीरशिक्षतम्।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं ताभिरू षु अतिभिरश्विना गतम्।। ऋग्वेद-१-११२-१९

११- सिकता

यह भी कल्पित नाम है। निवावरी के साथ इसकी बनाई ऋचायें (६/८६/११-२०) मिलती हैं। जिनमें सोम का वर्णन किया गया है। निवावरी के प्रकरण में ऋचायें आ गयी हैं।

"द्युलोकचुम्बी अन्तरिक्ष-पूरक भुवनों में अर्पित यजनीय द्रापि पक्षी जैसा चलता है। हे कवि इन्द्र, तुम्हारे कर्म से द्यौ और पृथिवी के बीच शुचि सोम स्तुति द्वारा पूत होता है।"[1] इस सूक्त में ऐसी कोई बात नहीं है। जिससे कहा जा सके कि इसकी कवयित्री कोई स्त्री है।"[2]

१२- सार्पराज्ञी

यह भी कल्पित नाम है। इसके सूक्त (१०/१६८) को काक्षीवान् के पुत्र शबर ऋषि का भी बतलाया जाता है। इसमें गाय का वर्णन है।

"सुखमय वायु गायों के पास रहें। वह बलदायक वनस्पति खायें। बलदायक गायें प्रभूत जल-पान करें। हे रूद्र रक्षावाली पैरोंवाली गायों को सुखी रखो।"[1]

जो गायें अपने शरीर को देवों के लिए देती हैं, जिनके सारे रूपों को सोम जानता है। सन्तानवाली, हमें दूध से परिपूर्ण करती उन गायों को गोष्ठ में लाओ।"[3]

१- प्र ते मदासो मदिरास आशवो ऽसृक्षत रथ्यासो यथा पृथक्।
धेनुर्न वत्सं पयसामि वाज्रिण मिन्द्रमिन्दवो मधुमन्त ऊर्मयः।। ऋग्वेद-६-८६-२

२- मयोभूर्वातो अभि वतूस्त्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ताम्।
पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्त्ववसाय पद्धते रुद्र मृळ। ऋग्वेद -१०/१६६/१

३- या देवेषु तन्व१मैरयन्त यासां सोमोविश्वा रूपाणि वेद।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि।। ऋग्वेद - १०/१६६/३

१३- उर्वशी

उर्वशी अप्सरा थी, जिससे पुरूरवा ने प्रेम किया। इनकी प्रेम कहानियाँ सप्त-सिन्धु में उस समय प्रचलित थीं। सम्भवतः यह मानुष-मानुषी प्रेमी और प्रेमिका रहे हो, जिन्हें मानव-देवी बना दिया गया। ऋग्वेद के इस प्रेम कथानक वाले सूक्त (१०-६५) को उर्वशी और पुरूरवा की रचना बतलाया गया है। जिससे यही ज्ञात होता है कि असली रचयिता का नाम विस्मृत हो गया था। उसको छोड़कर जाती उर्वशी से प्रेमी पुरूरवा बहुत अनुनय-विनय करता है, "कि हे उर्वशी! तुम्हारा पुत्र मेरे पास किस प्रकार रहेगा? वह मेरे पास आकर रोयेगा। पारस्परिक प्रेम के बन्धन को कौन तोड़ना स्वीकार करेगा? तुम्हारे श्वसुर के घर में श्रेष्ठ आलोक जगमगा उठा है।"[1] वह यहाँ तक कह देती है कि स्त्रियों में प्रेम नहीं होता। उनके हृदय भेड़ियों के हृदय जैसे होते हैं। पुरूरवा ने कहा- हे उर्वशी! मैं तुम्हारा पति आज पृथिवी पर गिर पड़ा हूँ। वह (मैं) फिर कभी न उठ सकूँगा। वह दुर्गति के बन्धन में फँसकर मृत्यु को प्राप्त हो और अमङ्गलकारी भेड़िया आदि उसके शरीर का भक्षण करें।"[2]

१- कदा सुनुः पितरं जात इच्छाच्चक्रन्नाश्रु वर्तयद्विजानन्।
को दम्पती समनसा वि यूयोदध यदग्निः श्वशुरेषु दीदयत्।। ऋग्वेद १०,६५,१२

२- सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्परावतं परमां गत्तवा उ।
अधा शयीत निर्ऋृतेरूपस्थेऽधैनं वृका रभससो अद्युः।। ऋग्वेद १०,६५,१४

एक ऋचा में उर्वशी कहती है स्त्रियों में स्थायी प्रेम नहीं होता- "हे पुरुरवा! तुम गिरो मत। तुम अपनी मृत्यु की इच्छा मत करो तुम्हारे शरीर को वृक आदि भक्षण न करें। स्त्रियों का और वृकों का हृदय एक समान होता है। उनकी मित्रता कभी अटूट नहीं रहती।"[१]

एक ऋचा में वशिष्ठ का नाम आता है जिससे सन्देह होता है कि शायद वशिष्ठ ही इन ऋचाओं के कर्ता हो। "पुरुरवा ने कहा- उर्वशी जल को प्रकट करने वाली तथा अंतरिक्ष को पूर्ण करने वाली है। वशिष्ठ ही उसे अपने वश में कर सकें हैं। तुम्हारे पास उत्तमकर्ता पुरुरवा रहे (मैं रहूँ)। हे उर्वशी मेरा दिल जल रहा है, अतः लौट आओ।"[२]

१- पुरुरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन्।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता। ऋग्वेद १० ।९५ ।१५

२- अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीमुप शिक्षाम्युर्वशीं वशिष्ठः।
उप त्वा रातिः सुकृतस्य तिष्ठान्नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे।। ऋग्वेद १० ।९५ ।१७

१४- रात्रि

भारद्वाजी रात्रि भी कल्पित ऋषि का है। रात्रि का वर्णन इस (१०/१२७) सूक्त में आया है। दूसरी परम्परा के अनुसार सोभारि- पुत्र कुशिक (विश्वामित्र वंश-स्थापक) इसके ऋषि माने गये हैं। गायत्री छन्द में निबद्ध होने के कारण इसे गेय माना गया है।

"देवी रात्रि चारों ओर आकर प्रकट हुई, उसने नक्षत्रों द्वारा सारी शोभा को धारण किया।"[१]

देवी ने आते समय अपनी बहिन उषा को ग्रहण किया। उसने अन्धकार को हटाया।"[२]

"ग्राम चुप है, वटोही चुप है पक्षी चुप है, इच्छा वाले चुप है"[३]

हमें (चारों ओर) काला अन्धकार दिखाई दे रहा है, वह प्रत्यक्षतः वर्तमान है हे उषा, तुम उसे ऋण की तरह हटाओ।"[४]

१- रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्य१ क्षभिः विश्वा अधि श्रियोऽधित।। ऋग्वेद-१०-१२६-१

२- निरु स्वसारमास्कृतो षस देव्यायती अपेदु हासते तमः।। ऋग्वेद -१०-१२६-३

३- नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः निश्येनासश्चिदर्थिनः ।। ऋग्वेद १०-१२६-५

४- उप मा पेपिशत तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित उष ऋणेव यातय।। ऋग्वेद -१०-१२६-७

१५- श्रद्धा कामायनी

यह भी कल्पित नाम है। इसके सूक्त (१०,१५१) में श्रद्धा की महिमा गायी गई है-

"श्रद्धा से अग्नि प्रज्वलित होती है, श्रद्धा से हवि आहुत की जाती है। ऐश्वर्य के सिर पर रहने वाली श्रद्धा मैं वाणी से बतलाती हूँ।"[1]

हे श्रद्धे, दाता का प्रिय करो। हे श्रद्धे देने की इच्छा वाले का प्रिय करो। भोज (हविष्य) देने वाले का प्रिय करो। यज्ञ करने वालों के प्रति मेरे इस कथन को करो।"[2]

जैसे देवताओं में उग्र असुरों ने श्रद्धा की ऐसे ही भोजों और यज्ञकर्त्ताओं में हमारे कथन को करो।"[3]

१- श्रद्धायाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धा भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि।। ऋग्वेद- १०-१५१-१

२- प्रियं श्रद्धे रदतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजेषु यज्वस्वि दं म उदितं कृधि ।। ऋग्वेद - १०-१५१-२

३- यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे।
एवं भोजेषु यज्वस्व स्माकमुदितं कृधि।। ऋग्वेद - १०-१५१-३

१६- सरमा

सरमा देवों की कुटिया मानी जाती है। सप्तसिन्धु के आर्यों की निर्लज्ज लूट की कामना को सरमा के पणियों के सामने इस तरह व्यक्त किया-

हे प्राणियों! इन्द्र के द्वारा भेजी गई, मैं उसकी दूती हूँ। तुम लोगों के प्रभूत धन की इच्छा करती हुई घूम रही हूँ। मेरे कूदने के भय से उस रसा के जल ने मेरी सहायता की। इस प्रकार मैंने रसा के जल को पार किया।[1]

हे सरमा ! इन्द्र कैसा है ? उसकी दृष्टि कैसी है? जिसकी दूरी (तुम) दूर से यहाँ आई हो। अगर वह आवे, तो हम उसे मित्र बनायेगें। तब वह हमारी गायों का सरंक्षक (गोपति) होगा।[2]

१- इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि महइच्छन्ती पणयो निधीन्वः।
अतिष्कदो मियसा तन्न आव न्तथा रसाया अतरं पयांसि।। ऋग्वेद - १०।१०८।२

२- की दृङ्ङिन्द्रः सरमे का दृशीका, यस्येदं दूतीरसरः पराकात्।
आ च मच्छान्मित्रमेना दधामाथा गवां गोपतिर्नो भवाति।। ऋग्वेद - १०।१०८।३

(सरमा ने कहा) मैं उसको आक्रान्त नहीं समझती हूँ; अपितु वही आक्रामक है, जिसकी दूती बनकर मै बहुत दूर से यहाँ आई हूँ। बहती हुई गहरे जल वाली नदियाँ उसको छिपा नहीं सकतीं। हे पणियों! इन्द्र द्वारा मारे जाने पर तुम लोग (पृथिवी पर) शयन करोगे।"[१]

(पणियों ने कहा) हे सरमा ! आकाश की छोर तक चारों तरफ घूमती हुई इन गायों को, जिनकी तुमने इच्छा की है, हे सौभाग्यवती ! तुममें से कौन मुक्त कर सकता है? इसके अतिरिक्त हमारे शस्त्र भी तो अत्यन्त तीक्ष्ण है।"[२]

(सरमा ने कहा) - हे पापियों ! तुम्हारे वचन शस्त्र के आघात से सुरक्षित हैं; तथा पापी शरीर बाणों के निशाने से बचने वाले हो सकते हैं। तुम्हारे पास पहुँचने के लिए मार्ग भी अगम्य हो सकता है; किन्तु बृहस्पति किसी भी प्रकार से दया नहीं करेगें।"[३]

१- नाहं तं वेद दभ्यं दभत्स, यस्येदं दूतीरसरं पराकात्।
न तं गूहन्ति स्रवतो गभीरा, हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे।। ऋग्वेद १० ।१०८ ।४

२- इमा गावः सरमे या ऐच्छः परिदिवो अन्तान्त्सुभगे पतन्ती।
कस्त एना अव सृजादयुध्व्युतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा।। ऋग्वेद-१० ।१०८ ।५

३- असेन्या वः पणयो वचांस्यनिषव्यास्तनवः सन्तुः पापीः।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था, बृहस्पतिर्व उभया न मृळात् ।ऋग्वेद-१० ।१०८ ।६

१७- सूर्या

यह भी कल्पित नाम है। सूर्या को सविता (सूर्य) की पुत्री या पत्नी कहा गया है। चाहे कल्पित नाम से ही यह सूक्त (१०/८५) संग्रह किया गया हो, पर इसमें आर्य-पत्नी के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें आयी हैं। यह सूक्त आज भी वैवाहिक अवसरों पर पढ़ा जाता है।

सत्य द्वारा भूमि थामी गयी है। सूर्य द्वारा द्युलोक थामा गया है। सत्य द्वारा देव आदित्य उत्तम्भित है। सोम द्युलोक में स्थित है।"[१]

सोम से आदित्य बली है, सोम से पृथिवी महान् है। इन नक्षत्रों के पास सोम रक्खा गया है।"[२]

रैमी (ऋचायें) वधू के साथ अनुदान की जाने वाली सखी थीं, नाराशंसी (ऋचायें) बहू की दासी थीं। सूर्या का सुन्दर वस्त्र गाथा से परिष्कृत था।"[३]

१- सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः।। ऋग्वेद - १०-८५-१

२- सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही।
अथनक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः।। ऋग्वेद - १०-८५-२

३- रैभ्यासीदनुदेयीं नाराशंसी न्योचनी सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम। ऋग्वेद- १०-८५-६

जब सूर्या पति के पास गयी, तो चिन्तन चादर था, चक्षु अंजन था, द्युलोक और भूमि कोश था।"[१]

स्तुति के मंत्र धुर थे, कुरीर छन्द उसका ओपश था। सूर्या के वर अश्विद्वय थे, अग्नि जाने वाला दूत था।"[२]

सोम व्याह का इच्छुक था, अश्विद्वय वर थे। पति की कामना करने वाली सूर्या को सविता ने मन से अश्विनों को दिया।"

१- चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अम्यञ्जनम्।
द्योभूमिः कोश आसीद यदयात् सूर्या पतिम्।। ऋग्वेद - १०-८५-७

२- स्तोभा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः।
सूर्याया अश्विना वराऽग्निरासीत् पुरोगव·।। ऋग्वेद -१०-८५-८

जाते समय धुरे में फैले चक्के शुचि थे। पति के पास जाती सूर्या मनोमय रथ पर चढ़ी।"[१]

जिस चादर को सविता ने प्रदान किया था, वह सूर्या के आगे-आगे चला। मधा नक्षत्रों में बैलों को हांका गया, अर्जुनी में सूर्या ले जायी गई।"[२]

हे सूर्ये नाना रूप सुनहले सुआच्छादित सुरंग सेमल के सुन्दर चक्रवाले रथ पर चढ़। जाकर पति के लिये सुखमय अमृत लोक बना।"[३]

विश्वासु को नमस्कार पूर्वक वाणी से मैं प्रार्थना करता हूं। तुम यहां से उठो, यह पतिवती है। तुम पिता के घर में बैठी दूसरी प्रशस्त यौवनसम्पन्ना कन्या की कामना करो। वह तुम्हारे भाग्य से जनी है, उसे ढूढ़ो।"

१- शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ऊनो मनस्मयं सूर्या ऽऽरोहत् प्रयती पतिम्।।
ऋग्वेद - १०-८५-१२

२- सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत् अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते।

३- उदीर्ष्वातः पतिवतीह्योइषा विश्वासुं नमसा गीर्भिरीले।
अन्यमिच्छ पितृषदं व्यक्तां सते भागो जनुषा तस्य विद्वि।ऋग्वेद - १०-८५-२१

पूषन्, तुझे हाथ में पकड़ कर यहां से ले जायें। दोनों अश्विन रथ द्वारा तुझे ले जायें। घरों में जा वश वाली गृह पत्नी को घर की व्यवस्था कर।"[1]

यह सुमंगली वधू आकर तुम इसे देख लो। इसको सौभाग्य प्रदान कर अपने-अपने घरों को जायें।"[2]

मैं सौभाग्य के लिये तुम्हारा पाणिग्रहण करता हूं। तू मुझ पति के साथ वृद्धावस्था अवस्था तक बनी रह। भग, अर्यमा, सविता, पुरन्ध्रि देवों ने तुझे गृहपति धर्म के लिए मुझे प्रदान किया।"

१- पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृहया ऽश्विना त्वा प्रवहतां रथेन।
गृहान गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि।। ऋग्वेद - १०-८५-२६

२- सौभाग्यमस्यै दात्वायाऽथास्तं विपरेतन।
तृष्टमेतत् कटुकमेत दपाष्ठवद्विषन्नैतदत्तवे।। ऋग्वेद- १०-८५-३३

दोनों (पति-पत्नी) यहीं रहें न बिछुड़ें, सम्पूर्ण (सौ वर्ष) की आयु प्राप्त करें। पुत्र और पौत्रों के साथ खेलते अपने घर में प्रसन्नचित्त रहें।"[1]

हे इन्द्र तुम सिंचन समर्थ हो। इस (वधू) को सुपुत्रा एवम् सुभगा बनाओ। इसमें दस पुत्रों को धारण करो और पति को ग्यारहवां बनाओ।"[2]

हे वधू! तू श्वसुरपुर की साम्राज्ञी बनो, सास की साम्राज्ञी बनो। ननद की साम्राज्ञी बनो और देवरों की साम्राज्ञी बनो।

१- इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभि र्मोदमानौ स्वे गृहे।। ऋग्वेद - १०-८५-४२

२- इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्रानां धेहि पतिमेकादशं कृधि।। ऋग्वेद -१०-८५-४५

१८- दक्षिणा

यह भी कल्पित नाम है दक्षिणा को प्रजापति की पुत्री कहा गया है। दक्षिणा का वर्णन दशममण्डल के १०७ वें सूक्त में हैं। इस सूक्त में ११ ऋचायें हैं। इस सूक्त में दान और दक्षिणा की महिमा गायी गयी है।

"मघवा सूर्य का महान् तेज आविर्भूत हुआ इनको और सारे जीवों को अन्धकार निर्मुक्त किया। पितरों द्वारा दी गई श्रेष्ठ ज्योति आई। दक्षिणा का विशाल पंख चतुर्दिक् दिखाई पड़ा।"[1]

दक्षिणा वाले ऊंचे द्युलोक में स्थान पाते हैं जो अश्व-दाता हैं वह सूर्य के साथ होता है। सुवर्णदाता अमरत्व प्राप्त करते हैं।

देवों को आराधना वाली दक्षिणा दिव्य मूर्ति है। देव कृपणों को संतुष्ट नहीं करते। और दोष से भय खाने वाले अधिकांश प्राणी जो दक्षिणा में तत्पर हैं, संतुष्ट होते हैं।

१- अविरन्भून्महि माघोनमेषां विश्व तमसो निरमोचि।
महि ज्योतिः पितृभिर्दत्तमागादुरुः पन्था दक्षिणाया अदर्शि।। ऋ०- १०।१०७।१

दानी पहले बुलाया जाता है। दानी श्रेष्ठ ग्रामणी होता है। जो पहले दक्षिणा देता है, मैं उसी को लोगों का राजा मानता हूँ।[1]

यज्ञकर्ता, सामगायक, स्तुति बोलने वाले उसी को ऋषि, उसी को ब्रह्मा कहते हैं। जिसने पहले दक्षिणा से आराधना की, वह शुक्र के तीनों शरीरों को जानता है।[2]

दक्षिणा अश्व और गाय देती हैं। दक्षिणा चाँदी और सोना देती हैं। दक्षिणा अन्न देती हैं, जो हमारी आत्मा हैं। आदमी यह जानते हुए ही दक्षिणा को कवच बनाता हैं। ऋ० - १०/१०७/७

भोजन प्रदान करने वाले न मरते, न दरिद्र होते न क्लेश पाते हैं और न तो व्यथित होते हैं। यह जो सारा भुवन और स्वर्ग है, सबको दक्षिणा उन्हें प्रदान करती है।''[3]

१- दक्षिणावान् प्रथमो हूत एति दक्षिणावान् ग्रामणीरग्रमेति।
तमेव मन्ये नृपति जनानां यः प्रथमो दक्षिणामाविवाय ।। ऋ० - १०।१०७।५

२- तमेव ऋषिं तमु ब्रह्मणमबाहुर्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम्।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो यः प्रथमो दक्षिणया रराध।। ऋ १०/१०७/६

३- न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुर्नरिष्यन्ति न व्यथन्तेह भोजाः।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत्सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति।ऋ० -१०/१०७/८

१६- विश्वारा

घोषा की तरह यह भी एक दूसरी महिला हैं, जिसे ऐतिहासिक कहा जा सकता है। विश्ववारा अत्रि-गोत्र में उत्पन्न हुई। इन्होंने अपने सूक्त (५/२८) में त्रिष्टुप, अनुष्टुप और गायत्री छन्दों में अग्नि की महिमा गाते हुए अपना नाम भी दिया है।

प्रज्वलित अग्नि द्युलोक में किरणों को फैलाता हैं, उषा के सामने विस्तृत होकर शोभा देता है। हवि-सहित श्रुवा को लेकर नमस्कार के साथ देवों को पूजतीं विश्ववारा पूर्व दिशा की ओर जाती हैं।"[१]

हे अग्नि महान् सौभाग्य के लिये तुम्हारे प्रकाश उत्तम हों, (तुम) शत्रुओं का नाश करो। तुम दाम्पत्य को सुनियमित करो तथा शत्रुता करने वालों के तेज को नष्ट करो।"[२]

१- समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया विभति।
एति प्राची विश्ववारा नमोमि देवाँ ईळाना हविषा घृताची ।। ऋग्वेद - ५-२८-१

२- अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभितिष्ठा महांसि।। ऋग्वेद - ५-२८-३

२०- शची

पौलोमी शची भी कल्पित नाम हैं। पुराणों से हमें ज्ञात होता है कि इन्द्र-पत्नी का नाम शची था, जो पुलोमा नामक असुर की पुत्री थी। यह एक संतुष्ट शक्तिशाली महिला अभिमान के साथ अपनी स्थिति का वर्णन करती है।

वह सूर्य उगा, मानों यह मेरा भाग्य उगा। मैंने सपत्नियों को परास्त किया, पति को अपने वश में कर लिया।"[१]

मैं केतु हूँ, मैं मस्तक हूँ, मैं उग्र एवम् सुन्दर बोलने वाली हूँ। पति मेरे मत के अनुसार चलता है।"[२]

मेरे पुत्र शत्रुहन्ता हैं और मेरी दुहिता शोभमाना है। मैं खूब जीतने वाली हूँ, पति के पास मेरी अतीव प्रशंसा होती है।"[३]

१- उदसौ सूर्यो अगा दुदयं मामको भगः।
अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः।। ऋग्वेद - १०-१५९-१

२- अहं केतुरहं मूर्धाऽहमुग्रा विवाचनी।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत्।। ऋग्वेद - १०-१५९-२

३- ममपुत्रा शत्रुहणो ऽथो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः।। ऋग्वेद - १०-१५९-३

२१- वसुक्र-पत्नी

इन्द्र के पुत्र वसुक्र की पत्नी के नाम से एक सूक्त (१०-२८) मिलता है, जिसमें वसुक्र - पत्नी तथा इन्द्र की बातें आती हैं।

वसुक्र-पत्नी कहती है- दूसरे सारे देवता आये मेरे ससुर यहाँ नहीं आये। यदि आते, तो वह भुना दाना खाते और सोम पीते। अच्छी तरह खाकर पुनः अपने घर जाते।''[1]

इस सूक्त के ऋषि वसुक्र भी कहे जाते हैं। इन्द्र ही नहीं, सप्त सिंधु के आर्य भी भुने जौ को खाना और सोम का पीना बहुत पसन्द करते थे। जो भोजन आदमी ग्रहण करता है, वही उसका देवता भी प्राप्त करता है।''

१- विश्वो ह्यन्यो अरिराजगाम ममेदह श्वसुरो ना जगाम।
जक्षीयाद्धाना उत सोमं पपीयात् स्वाशितः पुनरस्तं जगायात्।। ऋग्वेद - १०-२८,१

२२- वाक्

अम्भृण ऋषि की पुत्री वाक् भी कल्पित नाम है। इसका वर्णन ऋग्वेद (१०/१२५) में है। इस सूक्त में वाणी देवी की महिमा गायी गयी है।

मैं रुद्रों तथा वसुओं के साथ चलती हूँ। मैं आदित्यों और विश्वदेवों के साथ चलती हूँ। मैं मित्र तथा वरुण दोनों को धारण करती हूँ। मैं इन्द्र तथा अग्नि और दोनों अश्विनों को धारण करती हूँ।"[1]

मैं आवेश उत्पन्न करने वाले सोम को धारण करती हूँ। और मैं त्वष्टा, पूषा तथा भग को धारण करती हूँ। मैं सोम निचोड़ते हुए हवि-प्रदाता तथा भली-भाँति सहायता के योग्य यजमान के लिए धन धारण करती हूँ।"[2]

१- अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुतविश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा विभर्म्यमहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।। ऋग्वेद - १०।१२५।१

२- अहं सोममाहनसं विभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भयम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये इयजमानाय सुन्वते।। ऋग्वेद - १०।१२५।२

जो अन्न खाता है, जो देखता है, जो श्वास लेता है, जो इस कहे हुए को सुनता है, वह मेरे द्वारा होता है। मुझे न मानने वाले नष्ट हो जाते हैं। हे विद्वान्! सुनो (मैं) तुम्हारे लिए विश्वसनीय (बात) कहती हूँ।"[१]

मैं स्वयं ही देवताओं के लिए प्रिय यह (बात) कहती हूँ। जिसे - जिसे चाहती हूँ, उसे-उसे बलयुक्त, उसे ब्रह्मा, उसे ऋषि (तथा) उसे ज्ञानी बनाती हूँ।"[२]

ब्रह्मद्वेषी हिंसक को मारने के निमित्त मैं निश्चय ही रुद्र के लिए धनुष को तान देती हूँ। मैं मनुष्यों के लिए युद्ध करती हूँ। मैं द्युलोक तथा पृथ्वीलोक में समायी हुई हूँ।"[३]

१- मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ई शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि।। ऋग्वेद - १०/१२५/४।

२- अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तत्तमुग्रं कृणोमि तं ब्राह्मणं तमृषिं तं सुमेधाम्।। ऋग्वेद-१०/१२५/५

३- अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आविवेश।। ऋग्वेद १०/१२५/६ ।

२३- लोपामुद्रा

यह वसिष्ठ के भाई अगस्त्य की पत्नी थी। पति-वियोग सहन करने में असमर्थ लोपामुद्रा का अगस्त्य के साथ का संवाद (१/१७६) में है।

लोपामुद्रा- बीते वर्षों में बुढ़ापा लाने वाली उषाओं को दिन-रात सहती रहीं। बुढ़ापा शरीर-शोभा को नष्ट करता है। फिर, ऐसी पत्नी के पास पति क्यों जायें।"[1]

जो पुराने सत्यपालक थे, देवों के साथ और सच्ची बातें करते थे, उनका अन्त नहीं हुआ।"[2]

१- पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरूषसो जरयन्तीः
मिनाति श्रियं जरिमा तनूना मप्यू नु पत्नीर्वूषणो जगम्युः।। ऋग्वेद - १-१७६-१

२- ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन् त्साकं देवेभिश्वदन्नृतानि।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः सम् नु पत्नीर्वृषाभिर्जगभ्युः।। ऋग्वेद - १ - १७६-२ ।

अगस्त्य – "हम व्यर्थ नहीं थके, देव लोग हमारी रक्षा करते हैं। हम सारे भोगों को पा सकते हैं, यदि ठीक से दोनों चाहें, तो यहाँ सैकड़ों ले सकते।"[1]

काम को मैने रोका है, पर यहाँ–वहाँ–कहीं से वह आ जाता है। अधीरा कामिनी लोपामुद्रा धीर उच्छवास लेते हुए पति का संगम करती है।"[2]

१– न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत् स्पृधो अभ्यश्नवाव।
जयावेदत्र शतनीथमाजिं यत् सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव।। ऋग्वेद– । १–१७६–३

२– नदस्थ मारुधतः काम आगन्नित आ जातो अमुतः कुतश्चित्।
लोपामुद्रा वृषणं नीरिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम्।। ऋग्वेद– १–१७६–४

२४- यमी-वैवस्वती

यह भी कल्पित नाम है। विवस्वान् की पुत्री यमी थी। उसने अपने भाई यम से प्यार करना चाहा। यम-यमी का संवाद ऋग्वेद संहिता के दशम मण्डल के दशवें सूक्त में उपलब्ध है।

(यमी अपने सहोदर भाई यम से कहती है) "विस्तृत समुद्र के मध्य द्वीप में आकर, इस निर्जन प्रदेश में मैं तुम्हारा मिलन चाहती हूँ, क्योंकि माता की गर्भावस्था से ही तुम मेरे साथी हो। विधाता ने मन ही मन समझा है कि तुम्हारे द्वारा मेरे गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह हमारे पिता का एक श्रेष्ठ दौहितृ होगा।"[१]

(यम ने कहा) "यमी, तुम्हारा साथी यम तुम्हारे साथ ऐसा सम्पर्क नहीं चाहता, क्योंकि तुम सहोदरा भगिनी हो, अतः अगन्तव्या हो। यह निर्जन प्रदेश नहीं है क्योंकि द्युलोक को धारण करने वाले महान् बलशाली प्रजापति के पुत्रगण सब कुछ देखते रहते हैं।"[२]

१- ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरु चिदर्णवं जगन्वान्।
पितुर्नयातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यमानः।। ऋग्वेद - १०।१०।१

२- न ते सखा वषटयेतत् सलक्ष्मा यद्विपुरुषा भवाति।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरादिवो धर्तार उर्विया परिख्यन्।। ऋग्वेद - १०।१०।२

(यमी ने कहा) "यद्यपि मनुष्य के लिए ऐसा संसर्ग निषिद्ध है, तो भी देवता लोग इच्छापूर्वक ऐसा संसर्ग करते हैं। अतः मेरी इच्छानुकूल तुम भी करो। पुत्र-जन्मदाता पति के समान मेरे शरीर में प्रवेश करो।"[१]

(यम ने उत्तर दिया) "हमने ऐसा कर्म कभी नहीं किया। हम सत्यवक्ता हैं। कभी मिथ्या कथन नहीं किया है। अन्तरिक्ष में स्थित गन्धर्व या जल के धारक आदित्य तथा अन्तरिक्ष में रहने वाली योषा (सरण्यू) हमारे माता-पिता हैं। अतः हम सहोदर बन्धु हैं। ऐसा सम्बन्ध उचित नहीं है।"[२]

(यमी ने कहा) "रूपकर्ता, शुभाशुभ प्रेरक सर्वात्मक दिव्य और जनक प्रजापति ने तो हमें गर्भावस्था में ही दम्पति बना दिया है। प्रजापति का कोई कर्म लुप्त नहीं रह सकता। हमारे इस सम्बन्ध को द्यावा-पृथ्वी भी जानते हैं।"[३]

१- उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य।
नि ते मनोमनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वमा विविश्याः।। ऋग्वेद - १०।१०।३

२- न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ।। ऋग्वेद - १०।१०।४

३- गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः।
वकिरस्य प्रमिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः।। ऋग्वेद - १०।१०।५

(यमी ने पुनः कहा) प्रथम दिन की बात कौन जानता है? किसने उसे देखा? किसने उसका प्रकाश किया है? मित्र और वरुण का यह जो महान् धाम (अहोरात्र) है, उसके बारे में हे मोक्ष बन्धनकर्ता यम! तुम क्या कहते हो? ।''[१]

''जैसे एक शैय्या पर पत्नी पति के साथ रहती है, वैसे ही तुम्हारे पास मै अपने शरीर को प्रकाशित कर देती हूँ? तुम मेरी अभिलाषा करो। आओ हम दोनो एक स्थान पर शयन करें। रथ के दोनो पहियों के समान हम दोनों एक कार्य में प्रवृत्त हों।''[२]

(यम ने उत्तर दिया) ''देवी गुप्तचर रात-दिन विचरण करते हैं। उनकी आँखें कभी बन्द नहीं होतीं। दुःखदायिनी यमी ! शीघ्र दूसरे के पास जाओ और रथ के पहियों के समान उसके साथ रहो।''[३]

१- को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्रवोचत्।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आह्नो वीच्या ह्नन्।। ऋग्वेद-१०।१०।६

२- यमस्य मा यम्यं काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद्वृहेव रथ्येव चक्रा।। ऋग्वेद - १०।१०।७

३- न तिष्ठन्ति न निमिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति।
अन्येन महाहनो याहि तूयं तेन वि रथ्येव चक्रा ।। ऋग्वेद - १०।१०।८

(यम ने पुनः कहा) दिन-रात में यम के लिए जो कल्पित भाग है, उसे यजमान दें। सूर्य का तेज यम के लिए उदित हो। परस्पर सम्बद्ध दिन, द्युलोक और भूलोक यम के बन्धु हैं। यमी, यम भ्राता के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष को धारण करें।"[1]

(यम ने पुनः कहा) "भविष्य में ऐसा युग आयेगा, जिसमें भगिनियाँ अपने बन्धुत्व विहीन भ्राता को पति बनावेंगी सुन्दरी ! मेरे अतिरिक्त किसी दूसरे को पति बनाओ। वह वीर्य सिंचन करेगा, उस समय उसे बाहुओं में आलिङ्गन करना।"[2]

(यमी ने कहा)," वह कैसा भ्राता है, जिसके रहते भगिनी अनाथ हो जाय, और भगिनी ही क्या है, जिसके रहते भ्राता का दुःख दूर न हो ? काममूर्छिता मैं नाना प्रकार से कह रहीं हूँ।"[3]

१- रात्री भिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्यचक्षुर्मुहूरुन्मिमीयात्।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विभृयादजामि।। ऋग्वेद - १०।१०।९

२- आ घा ता गच्छानुन्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि।
उप बर्वृहि वृषभाय बाहु मन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्।। ऋग्वेद - १०।१०।१०

३- किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिनिर्गच्छात्।
कामभूता वहे तद्रापामि तन्वा मे तन्वं सं पिपृग्धि ।। ऋग्वेद-१०।१०।११

(यम ने उत्तर दिया)-“हे यमी! मै तुम्हारे शरीर से अपने आप को दूर रखना चाहता हूँ। हे सुन्दरी! मुझे छोड़कर अन्य के साथ आमोद-प्रमोद करो। तुम्हारा भ्राता ऐसा नहीं कर सकता।”

(यमी ने कहा) – “हाय यम! तुम दुर्बल हो, तुम्हारे हृदय और मन को मैं कुछ नहीं समझ सकती। तुम अन्य स्त्री को चाहते हो, पर मुझे नहीं।

यम ने कहा- “तुम भी पर पुरुष को चाहो, पर मुझे नहीं। इसी में तुम्हारा मङ्गल है।

यम- यमी के इस संवाद से यह अवश्य ज्ञात होता है कि इस प्रकार के सम्बन्ध को सप्त सिंधु के आर्य ठीक नहीं मानते थे।

ऋग्वेद में ऋषिकाओं की संख्या चाहे दो दर्जन हो, पर उनमें घोषा और विश्ववारा ही ऐतिहासिक हैं। इन ऋचाओं से यह सिद्ध होता है कि वैदिक युग में नारी अत्यन्त प्रतिष्ठित थी।

१- न वा उ ते तन्वा तन्वं सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्।
अन्येन मत् प्रमुदः कल्पस्व न ते भ्राता सुभगे वष्टयेतत्।। ऋग्वेद-१० ।१० ।१२

२- बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम।
अन्या किल त्वा कक्ष्येव युक्तं परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्।। ऋग्वेद-१० ।१० ।१३

३- अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उत्वां परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाऽधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम्।। - ऋग्वेद - १० ।१० ।१४

उपसंहार

शिवा भव पुरुषेभ्यो, गोभ्यो अश्वमेभ्यः शिवा।

शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि।। अथर्ववेद - ३/२८/३

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में वैदिक युगीन नारी की वास्तविक स्थिति को समझने का प्रयास किया गया है। गत सात अध्यायों में कथित विषयों से संहिता युगीन नारी-समाज के उत्कर्ष का स्पष्ट रूप से अनुमान लगाया जा सकता है। उस समय का समाज पुत्र प्राप्ति के लिए अधिक उत्सुक रहता था पर पुत्री की उपेक्षा होती थी अथवा उसे हीन भावना से देखा जाता था, इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नही मिलता है क्योंकि उस समय के नारी-समाज ने जीवन के सभी क्षेत्रों की भाँति आध्यात्मिक क्षेत्र में भी अपना विशिष्ट महत्त्व बनाये रखा।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि, उस समय कन्या स्वतन्त्रतापूर्वक जीवन-यापन करती हुई अपना जीवन साथी चुनने को स्वतंत्र थी। कन्यायें ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वेदाध्ययन करती थीं, तत्पश्चात् उनका वैवाहिक जीवन प्रारम्भ होता था और वे ऐश्वर्यवान् पति को पाकर सुशील सन्तान को उत्पन्न करती थीं। प्रगाढ प्रेम वाले पति-पत्नी की दृढ़ मान्यता थी कि संयमित जीवन से मृत्यु को भी दूर किया जा सकता है। स्त्री-पुरुष समान रूप से सामाजिक, राजनैतिक धार्मिक आदि सम्मेलनों में भाग लेते थे। नारी के बिना नर को "याग" न करने की धारणा के पीछे भी नारी

सम्मान की झलक मिलती है। पत्नी पति की प्रिया हुआ करती थी। ऋग्वेद (१,७३,३) में वर्णित है कि– "विश्व का पालक अग्नि पृथिवी पर इसी प्रकार (सर्वप्रिय होकर) रहता है, जैसे सूर्य देवता, जैसे हितकारी मित्रों से युक्त राजा, जैसे सामने और सुरक्षित स्थानों पर बैठे हुए वीरगण, जैसे सच्चरित्र और पति-प्रिय नारी।"

माता-पुत्री पत्नी के रूप में नारी का इतना बड़ा सम्मान था कि उसने अपने इतने अधिकारों की कल्पना भी नहीं की होगी। अपने सम्पूर्ण परिवार पिता, पति, पुत्रादि की शुभकामना करने वाली नारी ने अपने आलोक से सम्पूर्ण जगत को आभासित किया । तभी तो यजुर्वेद (१४.३) में कहा गया है कि– "हे नारी ! तुम अपनी योग्यता से ज्ञान का कोश होकर देवों के कल्याण तथा महान् आनंद के लिए इस घर में रहो। पुत्र को सुखी देखने वाले पिता के समान तुम सबको सुख देने वाली होना। तुम सुख का अनुभव करने वाले अपने शरीर से यहाँ रहो।"

वेदाध्ययन के विषय में मनु० का मत है कि विद्या उसी को देना चाहिए जो इसका सुयोग्य पात्र हो। जैसा कि (मनु २/११४) में कहा गया है–"मैं तेरी निधि हूँ, तुम मेरा पालन करो, असूया करने वाले को मुझे मत देना, इसमें मेरी शक्तिमत्ता है।"

उपनयन के बाद ही व्यक्ति विद्या का अधिकारी होता था। यजुः संहिता (२६/२) में कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अतिशूद्र को भी वेद पढ़ने और सुनने की अनुमति दी गयी है। ऋग्वेद मे अनेक मंत्र-दृष्टा ऋषियों के साथ अपाला, घोषा, लोपामुद्रा, विश्ववारा जूहू, रोमशा शश्वती, सर्पराज्ञी महिलाएँ इसके ज्वलन्त उदाहारण हैं।

संहिता में माँ दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी भी नारी ही है और तैत्तिरीय संहिता में "मेखलया यजमानं दीक्षयति यौक्त्रेण पत्नीम् ६/१/३" के द्वारा नारी की प्रशंसा की गयी है। ऋग्वेद (१०/१०६/४) स्त्रियों के विषय में "स्त्रीशूद्रौ नाधीयतामिति" उक्ति आश्चर्य जनक लगती है।

वैदिक संहिताओं के उद्धरण से भास होता है कि नारी अपने नेतृत्व कार्य में पूर्णतः सफल रही है। वैदिक काल में बाल-विवाह, दहेज प्रथा एवं सती-प्रथा का अभाव था। पुनर्विवाह (विधवा-विवाह) का भी प्रचलन था परन्तु एक पत्नी व्रत को पवित्रता की श्रेणी में रखा जाता था। वैदिक-संहिता में पुरुष रूपी बीज को धारण करने वाली क्षेत्र स्त्री ही है।

नारी निन्दा न करो, नारी नर की खान।

नर से नारी हुए, ध्रुव प्रहलाद समान।।

वैदिक युगीन नारी की उपर्युक्त विशेषताओं एवम् उसकी उस समय अतीव सम्मानजनक स्थिति के आधार पर यह कहना सर्वथा उचित है कि नारी

को गौरव देना राष्ट्र, जाति और समाज की वृद्धि करना है। नारी आदिशक्ति है नारी सम्पूज्य है। यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

विश्वश्वेरि त्वं परिपासि विश्वं,

विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।

विश्वेशवन्द्या भवति भवन्ति,

विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः।।

(दुर्गासप्तशती)

अधीत-ग्रंथ सूची

क्रमांक	ग्रन्थ-नाम	लेखक-सम्पादक-प्रकाशक
१.	ऋग्वेद (सायण भाष्य)	सं० मैक्समूलर, लन्दन, चौखम्बा १९६६, वाराणसी वैदिक संशोधन मण्डल पूना, स्वाध्याय मण्डल पारडी (मूलमात्र)।
२.	ऋक्प्रातिशाख्य	मंगलदेव शास्त्री सम्पादित इलाहाबाद। १९३१ हिन्दी अनुवाद डॉ० वी०के० वर्मा प्रणीत, वाराणसी १९७०।
३.	ऋग्वेद व्याख्या	सं० कुन्हन राजा माधवकृत सी, अडयार पुस्तकालय, १९३९।
४.	उपनिषद् कालीन समाज एवं संस्कृति	राजेन्द्र कुमार त्रिवेदी, परिमल पब्लिकेशन्स दिल्ली।
५.	आङ्गिरस स्मृति	ए०एन० कृष्ण अय्यङ्गर-अड्यार लाइब्रेरी, मद्रास १९५३।
६.	अथर्ववेदकालीन संस्कृति	डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद् ज्ञानपुर (वाराणसी) १९८८।

७.	अष्टादश स्मृति	भारतबन्धु यन्त्रालय, अलीगढ़ प्रथम संस्करण १८६१।
८.	अथर्ववेद–सायणभाष्य	सं० शङ्कर पाण्डुरङ्ग पण्डित बम्बई १८६८।
६.	अथर्ववेद संहिता	सं० गोपाल प्रसाद कौशिक, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
१०.	अथर्ववेद	सं० दामोदरपाद सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल पारडी, सूरत, १६५८।
११.	गोपथ ब्राह्मण	गास्ट्रा सम्पादित, लीडेन १६१६।
१२.	कौषितकि ब्राह्मण	लिन्डेनर सम्पादित, जेना १८८७।
१३.	बीस स्मृतियां	(भाग १–२) श्रीराम शर्मा, संस्कृति संस्थान, बरेली, १६६८।
१४.	भृगु स्मृति	श्री कृष्णानन्द ब्रह्मचारी, जयभारत प्रेस, वाराणसी १६७४।
१५.	यजुर्वेद संहिता	भाष्य–स्वामी दयानन्द, अजमेर सं० १६८६।
१६.	यजुर्वेद संहिता	संस्कृत भाष्य उव्वट महीधर, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।

१७.	याज्ञवल्क्य स्मृति	मिताक्षरा व्याख्या बालभट्टी श्रीकर विश्वरूप श्री नारायण राम आचार्य निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १६४६।
१८.	कल्याण नारी अंक	गीता प्रेस, गोरखपुर १६४८।
१६.	ऐतरेय ब्राह्मण	सं० ए० हाग बम्बई, १८६३, सत्यव्रत सामश्रमी सम्पादित कलकत्ता १६६५ सायणभाष्य सहित आनन्दाश्रम पूना।
२०.	ऋग्वेद में पारिवारिक जीवन	डॉ० शिवराज शास्त्री लीला कमल प्रकाशन मेरठ १६६२।
२१.	ऋग्वैदिक काल में स्त्री तथा जल सेना	इन्दिराचरण पाण्डेय, नागरी प्रचारिणी पत्रिका वाराणसी, वर्ष ७६, अंक १२।
२२.	प्राचीन भारतीय समाज एवं चिन्तन	डॉ० चन्द्रदेव सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी १६८७।
२३.	अष्टाध्यायी	ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत, चौखम्बा विश्व भारती, वाराणसी।
२४.	पराशर स्मृति	अनु० श्री वासुदेव, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, प्रथम संस्करण १६६८।

२५.	धर्मशास्त्र संग्रह	खेमराज श्री कृष्णदास, बम्बई, प्रथम संस्करण १६१३।
२६.	निरूक्त	राजवाडे, पूना १६०४, वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, सं० १६६६।
२७.	वैदिक साहित्य संस्कृति और दर्शन	डा० विम्भवर दयाल अवस्थी प्रथम संस्करण १६८३ सरस्वती प्रकाशन, नया बैरहना, इलाहाबाद।
२८.	धर्मशास्त्र का इतिहास	(भाग १-५) डा० पी० वामन काणे, अनु० अर्जुन चौबे काश्यप, हिन्दी समिति उ०प्र०, लखनऊ १६७३-८०।
२६.	धर्मद्रुम	आचार्य राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय, किशोर विद्या निकेतन, भदैनी वाराणसी १६८०।
३०.	दैवत संहिता	(भाग १-३) स्वाध्याय मण्डल, औघा।
३१.	धर्म एवं समाज	डा० राधा कृष्णन सरस्वती बिहार, जी०टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली १६७५।

३२.	तैत्तिरीय-आरण्यक	(भाग १-२) सं० महादेव चिमणाजी आपटे आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना सन् १९२६-२७।
३३.	तैत्तिरीय ब्राह्मण	सामशास्त्री सम्पादित, मैसूर १९२१।
३४.	तैत्तिरी-संहिता	सं० दामोदर पाद सातवलेकर,स्वाध्याय मण्डल, पारडी संवत २०१३।
३५.	छान्दोग्योपनिषद्	गीताप्रेस, गोरखपुर २०१३ वि० तृतीय संस्करण।
३६.	छान्दोग्य ब्राह्मणम्	सं० श्री दुर्गामोहन भट्टाचार्य, कलकत्ता, १८५५।
३७.	प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास	ओमप्रकाश वाइली, ईस्टर्न लिमिटेड प्रथम संस्करण १९७५।
३८.	प्राचीन भारत में नारी	डॉ० उर्मिला प्रकाश मिश्र, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल १९८७।
३९.	प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी	डॉ० गजानन्द शर्मा, रचना प्रकाशन इलाहाबाद १९७१।
४०.	प्राचीन भारत में प्रशासन	अत्रिवेद विद्यालंकार, भारतीय ज्ञानपीठ काशी १९५८।

४१.	प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति	डा० अनन्त सदाशिव अल्तेकर, मनमोहन प्रकाशन, वाराणसी १६८०।
४२.	प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास	डॉ० जयशंकर मिश्र, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना द्वितीय संस्करण।
४३.	प्राचीन भारत की सामाजिक संस्कृति	डॉ० रामजी उपाध्याय, रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहाबाद १६६३।
४४.	प्राचीन भारतीय संस्कृति	बी०एन० लूनिया, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, १६७२।
४५.	पंचविश ब्राह्मण	अनन्द चन्द्र सम्पादित कलकत्ता १८७०।
४६.	प्रमुख स्मृतियों का अध्ययन	डॉ० लक्ष्मीदत्त ठाकुर हिंदी समिति, उत्तर प्रदेश १६६५।
४७.	प्राचीन भारतीय स्मृतिकार और नारी	अच्युदानन्द घिन्डीयाल एवं श्रीमती गोदावरी घिन्डियाल वाराणसी, १६७४।
४८.	बृहद्देवता	मैकडानल १६०४ (हारवर्ड), हिन्दी अनु० चौखम्बा १६६४।
४६.	वृहदारण्यकोपनिषद्	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १६३२।

५०.	वृहस्पति स्मृति	रंगस्वामी, आयङ्गर गायकवाड़ ओरियन्टल सिरीज, बड़ौदा, प्र० सं० १९४१।
५१.	भारत में विवाह एवं कामकाजी महिलाएं	प्रमिला कपूर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७६।
५२.	भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास	चन्द्रबली त्रिपाठी बस्ती, प्रथम सं० १९६७।
५३.	भारतीय धर्मशास्त्र में शूद्रों की स्थिति	डॉ० निरूपण विद्यालङ्कार, साहित्य भण्डार, मेरठ १९७१।
५४.	मनु की समाज व्यवस्था	सत्यमित्र दुबे, किताब महल, इलाहाबाद, १९६४।
५५.	मैत्रायणी संहिता	दामोदरपाद सातवलेकर, पारडी, १९४२।
५६.	मनुस्मृति	मेधातिथि भाष्य मनसुखराय मोर, कलकत्ता-१ पूर्वार्ध १९६७ उत्तरार्ध १९७१।
५७.	मनुस्मृति	अनु० श्री हरिगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा सिरीज आफिस।

५८.	मनु और स्त्रियां	चित्तामणि, इण्डिया बुक एजेंसी, इलाहाबाद १६३५।
५६.	यजुर्वेद-संहिता	भाष्य-स्वामी दयानन्द अजमेर सं० १६८६।
६०.	यजुर्वेद-संहिता	संस्कृत भाष्य उव्वर महीधर, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।
६१.	याज्ञवल्क्य स्मृति	मिताक्षरा हिन्दी अनुवाद डॉ० उमेश चन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत सिरीज आफिस, वाराणसी प्रथम संस्करण १६६७।
६२.	वाजसनेयि-संहिता	सं० ए० बेबर,. चौखम्बा सिरीज वाराणसी १६८१।
६३.	विष्णुस्मृति	जूलियस जाली, चौखम्बा संस्कृत सिरीज वाराणसी १६८१।
६४.	वेदकालीन समाज	डॉ० शिवदत्त ज्ञानी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी १६६७।
६५.	वेदों में भारतीय संस्कृति	आद्यादत्त ठाकुर, हिन्दी समिति उ०प्र० लखनऊ १६६७।

६६. वैदिक कोष — डॉ० सूर्यकान्त, काशी हिन्दी विश्वविद्यालय वाराणसी १९६३।

६७. वैदिक साहित्य — रामगोविन्द त्रिवेदी, वाराणसी १९५०।

६८. वैदिक वाङ्मय का इतिहास — भगवद्दत्त, प्रणव प्रकाशन, पंजाबी बाग दिल्ली १९७६।

६९. वैदिक साहित्य और संस्कृति — आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर वाराणसी १९६७।

७०. वैदिक युग के आभूषण — राय गोविन्द चन्द्र, चौखम्बा सिरीज, विद्याभवन वाराणसी १९६५।

७१. वेदों में नारी — डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद् ज्ञानपुर (वाराणसी) १९८६।

७२. वैदिक साहित्य में नारी — प्रशान्त कुमार वेदालंकार, वासुदेव प्रकाशन दिल्ली-७ १९६४।

७३. शतपथ ब्राह्मण — बेबर सम्पादित लाइपाजिंग १९२४, चौखम्बा १९६५ वैंकटेश्वर १९४६ (नानाभाष्य संचालित संस्करण)

७४. शांखायन ब्राह्मण — सायणभाष्य आनन्दाश्रम, पूना बनारस संस्कृत सिरीण १८७३।

७५.	शिक्षा संग्रह	बनारस संस्कृत सिरीज १८७३।
७६.	षड्विंश ब्राह्मण	सं० बे० रामचन्द्र शर्मा, तिरुपति सन् १९६७।
७७.	सामविधान ब्राह्मण	सं० डॉ० बे० रामचन्द्र शर्मा तिरुपति सन् १९६४।
७८.	संस्कार विधि	स्वामी दयानंद सरस्वती, वैदिक यंत्रालय अजमेर।
७९.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ० ए०बी० कीथ, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली १९६०।
८०.	सामवेद	दामोदरपाद सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, १९३९।
८१.	संस्कार–चन्द्रिका	भीमसेन शर्मा : महाविद्यालय ज्वालापुर, सं० १९८२।
८२.	स्मृति–चन्द्रिका	(भाग १ से ३) वेदण्ण भट्ट विरचितः जगन्नाथ रघुनाथ धर्मपुर, बम्बई १९१८।
८३.	स्मृतीनां समुच्चयः	आनन्दाश्रम ग्रन्थावलि (२७ स्मृतियाँ) विनायक गणेश आप्टे–आनन्दाश्रम मुद्रणालय पूना द्वितीय सं० १९२०।

८४.	स्मृति सन्दर्भ	सं० मनसुखराय मोर, कलकत्ता (चार भागों में ४४ स्मृतियाँ)
८५.	स्त्रियों की स्थिति	चन्दावती लखनपाल, ग्रन्थागार, लखनऊ सं० १६६०।
८६.	हिन्दू धर्मकोष	डॉ० राजबली पाण्डेय , उ०प्र० हिन्दी संस्थान, संवत् २०२६।
८७.	हिन्दू परिवार मीमांसा	प्रो० हरिदत्त वेदालंकार, कलकत्ता २१११ वि०।
८८.	हिन्दू-संस्कार	डॉ० राजबली पाण्डेय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १६६६।
८६.	हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास	प्रो० हरिदत्त वेदालंकार, लखनऊ, सन १६७०।
६०.	हिन्दू सभ्यता	राधाकुमुद मुखर्जी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली १६७१।
६१.	हिन्दुत्त्व	रामदास गौड़ ज्ञान मण्डल यन्त्रालय, काशी, सं० १६६५।
६२.	संस्कृत-हिन्दी कोश	वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली सं० प्रथम१६६६, द्वितीय १६६६।

९३.	संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास	डॉ० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य, प्र० रामनारायण लाल विजयकुमार इलाहाबाद सं० पंचम १९८९।
९४.	मनु-स्मृति	सुरेन्द्र नाथ सक्सेना, प्र० मनोज पब्लिकेशन सं० २०००।
९५.	ज्ञान शब्द कोश	मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव प्र० ज्ञानमण्डल बनारस सं० १९९३।
९६.	निरुक्त	डॉ० उमाशङ्कर शर्मा "ऋषिः" चैखम्बाविद्याभवन बनारस - सं० १९९८।
९७.	ऋक् संहिता स्कन्द-माधव-भाष्यसहित	सं० साम्बशिव शस्त्री त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज १९२९।
९८.	निरुक्तलोचन	सं० सत्यव्रत सामश्रयी, सं० द्वितीय कलकत्ता १९०७।
९९.	बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन	डॉ० कोमल चन्द जैन सोहनलाल जैन, धर्म प्रचारक समिति, अमृतसर १९६७।
१००.	वैदिक कोष	हंसराज लाहौर-१९२६।
१०१.	ऋग्वेद पर एक ऐतिहासिक दृष्टि	पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ, मोतीलाल बनारसी दास, १९६७।

१०२.	काण्व-संहिता (भाष्य संग्रह)	सं० दामोदर पादसातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल पारडी १६४०।
१०३.	शुक्ल यजुर्वेदीय काण्वसंहिता	माधव शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज १६१५।
१०४.	भारत में विवाह और कामकाजी महिलाएँ	प्रमिला कपूर, राजकमल - प्रकाशन दिल्ली १६७६।
१०५.	अथर्ववेद में सांस्कृतिक तत्व	डॉ० राजछत्र मिश्र, आनंद प्रकाशन इलाहाबाद, १६६८।
१०६.	वोमेन इन एन्शियेन्ट इण्डिया	मेरी ई० आर० मार्टिन, चौखम्बा पब्लिकेशन वाराणसी, १६६४।
१०७.	वोमेन इन ऋग्वेद	डॉ० भगवत शरण उपाध्याय, नन्दकिशोर ब्रदर्स वाराणसी १६४१।
१०८.	वोमेन इन दि वैदिक एज	शकुन्तलाराव शास्त्री, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १८५२ ।